# विवेक शिखा

श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष : ६ दिसम्बर १९८७ अंक : १२

श्रीमाँ
सारदा देवी
अंक

मूल्य : २५

# विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

११. श्री पी० राम—पटना (बिहार)
१२. श्री अशोक कुमार टाँटिया—कलकत्ता (प० बंगाल)
१३. श्री धर्म पाल—नई दिल्ली (नई दिल्ली)
१४. श्री रमेश चन्द्र कपूर—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१५. श्री पलक बसु—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१६. प्राचार्य, संतगजानन महाराज कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग—शेगाँव (महाराष्ट्र)
१७. श्री प्रभाकर सिंह—इलाहाबाद
१८. श्रीमती मंजु रस्तोगी – दुमका (बिहार)
१९. श्री कमल कुमार गुहा – कलकत्ता (पश्चिम बंगाल)
२०. श्री विवेक भुजंग राव कुलकर्णी—नागपुर (महाराष्ट्र
२१. श्रीराम विलास चौधरी—सुपौल, दरभंगा (बिहार)
२२. डा० रमेश चन्द्र प्रसाद—देवघर (बिहार)
२३. श्री मातादीन मिश्र—सारण (बिहार)
२४. एम० एम० नावालगी—कादरा (कर्नाटक)
२५. श्री हेमराज साहू—नरसिंहपुर (म० प्र०)
२६. डा० प्रकाश चन्द्र मिश्र—पटना (बिहार)
२७. श्री विनोद ब्रजभूषण अग्रवाल—नागपुर (महाराष्ट्र)
२८. श्री केशरदेव भालोटिया—जरमुण्डी (बिहार)
२९. श्री धर्मवीर शर्मा—खण्डवाया (उत्तर प्रदेश)
३०. श्री शिवशंकर सुखदेव पाटील—शेगाँव (महारा
३१. श्री गजानन महाराज संस्थान—शेगाँव (महारा
३२. श्री दयाशंकर तिवारी—
लाल बाजार, सीवान (बिह
३३. श्री राजकुमार गडोडिया—अपर बाजार (राँची
३४. कुमारी चुक चुक—बेलगाँव (महाराष्ट्र)
३५. डॉ० श्रीमती वीणा कर्ण—पटना (बिहार)
३६. डॉ० सम्पत पाटील—भदोल (महाराष्ट्र)
३७. श्री रमाशंकर राय—वाराणसी
३८. श्री आर० के० यादव—फैजाबाद
३९. कुमारी अल्पना सकलेचा—बम्बई
४०. श्री हिम्मत लाल रणछोड़दास शाह—बम्बई
४१. श्री नीरज गुप्ता—रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहा
४३. डॉ० शैल पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इला
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निशीथ कुमार बोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस,
४६. श्री नरेश कुमार कश्यप—नागपुर (महाराष्ट्र
४७. श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द समिति—अमरावती,
४८. डॉ० दर्शन लाल—कुराली (पंजाब)

---

# इस अंक में


१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है
२. सारदादेवीस्तोत्रम् — स्वामी अभेदानन्द
३. विश्वमाता (सम्पादकीय सम्बोधन)
४. श्रीमाँ सारदा देवी के संस्मरण — श्रीमत् स्वामी अभयानन्दजी महाराज
५. माँ सारदा — श्री अवधेन्द्रदेव नारायण
६. मैं हूँ आपकी सारदा !
७. ऐसी हैं माँ सारदा (कविता) — डॉ० केदार नाथ लाभ
८. मातृ-प्रणाम — श्रीमती स्निग्धा मजुमदार
९. बेलुड़ मठ में दुर्गा पूजा — प्रत्यक्षदर्शी
१०. श्रीरामकृष्ण तथा ईशु — श्री 'म'
११. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा — चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

# विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—६ दिसम्बर—१९८७ अंक—१२

इष्टदेव का हृदय कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय।

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

| | |
|---|---|
| ाजीवन सदस्य | २५० रु० |
| ार्षिक | २० रु० |
| जिस्टर्ड डाक से | ३५ रु० |
| क प्रति | २ रु० ५० पैसे |

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजनेकी कृपा करें :

## श्रीरामकृष्ण ने कहा है

( १ )

वरसात का पानी ऊँची जमीन पर नहीं ठहर पाता, वहकर नीची जगह में ही जमता है। वैसे ही ईश्वर की कृपा भी नम्र व्यक्तियों के ही हृदय में ठहरती है, अहंकार-अभिमानपूर्ण हृदय में नहीं।

( २ )

हवा चन्दन की सुगन्ध और विष्ठा की दुर्गन्ध दोनों को लेकर वहती है, परन्तु उनमें से किसी के भी साथ मिल नहीं जाती। इसी प्रकार, मुक्त पुरुष भी संसार में रहते तो हैं, परन्तु वे संसार के साथ मिलकर एक नहीं हो जाते।

( ३ )

जिस प्रकार तेल न हो तो दीप नहीं जल सकता, उसी प्रकार ईश्वर न हों तो मनुष्य जी नहीं सकता।

( ४ )

भगवत्कृपा का पवन सदा वह रहा है। आलसी लोग उसका सदुपयोग नहीं करते। परन्तु जो उद्यमशील होते हैं वे अपनी नौका का पाल फहरा देकर आसानी से पार हो जाते हैं।

( ५ )

ईश्वरदर्शन होने का एक लक्षण है आनन्द। जैसे समुद्र में ऊपर तो तरंगों का खूब हिल्लोल-कल्लोल रहता है; परन्तु नीचे शांत गम्भीर जल होता है।

# सारदादेवीस्तोत्रम्

— स्वामी अभेदानन्द

प्रकृतिं परमामभयां सरलां सरलस्वरूपधरां जगतापहराम् ।
शरणागतसेवकतोषकरीं प्रणमामि परां जननीं जगताम् ॥१

गुणहीनसुतानपराधयुतान् कृपयाय सगुह्य मोहगतान् ।
तरणीं भवसागरपारकरीं प्रणमामि परां जननीं जगताम् ॥२

विषयं कुयुगं परिहृत्य सदा चरणांबुजहामृतधांतिगुराम् ।
पिब भृंगमनो भवरोगहरां प्रणमामि परां जननीं जगताम् ॥३

कृपां कुरु महादेवि सुतेषु प्रणतेषु च ।
चरणाश्रयदानेन कृपामयि नमोऽस्तु ते ॥४

लज्जापटावृते नित्यं सारदे ज्ञानदायिके ।
पापेभ्यो नः सदा रक्ष कृपामयि नमोऽस्तुते ॥५

रामकृष्णगतप्राणां तन्नामश्रवण प्रियाम् ।
तद्भावरंजिताकारां प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥६

पवित्रं चरितं यस्याः पवित्रं जीवनं तथा ।
पवित्रतास्वरूपिण्यै तस्यै कुर्मो नमो नमः ॥७

देवीं प्रसन्नां प्रणतार्तिहंत्रीं योगींद्रपूज्यां युगधर्मपात्रीम् ।
तां सारदां भक्तिविज्ञानदात्रीं दयास्वरूपां प्रणमामि नित्यम् ॥८

स्नेहेन बध्नासि मनोऽस्मदीयं दोषानशेषान्सगुणीकरोषि ।
अहेतुना नो दयसे सदोषान् स्वांके गृहीत्वा यदिदं विचित्रम् ॥९

प्रसीद मातर्विनयेन याचे नित्यं भव स्नेहवती सुतेषु ।
प्रेमैकबिंदुं चिरदग्धचित्ते विषिंच चित्तं कुरु नः सुशांतम् ॥१०

जननीं सारदां देवीं रामकृष्णं जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥११

—०—

सम्पादकीय सम्बोधन

# विश्वमाता

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

अभी कुछ दिनों पहले की बात है। एक विश्वविद्यालय की प्रबुद्ध छात्रा मिलने आयी थी। उसने स्वामीजी के भावादर्शों, विशेषकर युवजनों से उनकी अपेक्षाओं के विषय में खुलकर और बड़े उत्साह से बातें कीं। मैंने उससे पूछा, 'पढ़ने के बाद तुम क्या करना चाहती हो?' निःसंकोच और प्रसन्नता पूर्वक उसने कहा, 'जाहिर है; मैं विवाह करना चाहूँगी। कोई अच्छा-सा बौद्धिक स्मार्ट लड़का मिल जाय, ऊँचे पद पर हो, कार-बंगला हो और मैं सेटलड लाइफ गुजारूँ।' 'और तुम्हारी इतनी ऊँची शिक्षा का क्या होगा?'—मैंने पुनः प्रश्न किया। 'क्यों? कोई सर्विस की तलाश करूँगी, ताकि आर्थिक दृष्टि से पुरुष के अधीन रहने की हीन भावना नहीं रहे और कुछ ज्यादा ही सुखी जीवन जी सकूँ।'—उसका प्रत्युत्तर था। 'और स्वामीजी की युवजनों से जिन अपेक्षाओं की तुमने अभी चर्चा की थी?' 'वह तो अपनी जगह पर ठीक ही है, लेकिन जिन्दगी जिन्दगी है और इसे अपने ढंग से जीने के मेरे अपने सपने हैं।' वह बोलती चली गयी।

मैं सोचता रहा। ऊँचे आदर्श की बातें आज ढाढ़ंग रूप की बातें बन कर रह गया है। श्रीमतन भारतीय नारियों की यही मानसिकता है जिसे उस छात्रा ने खुलकर व्यक्त किया था। जीवन का खुला छिछला आनन्द, वैयक्तिक सुख-भोगों की अपरिमित और कभी न पूरी होने वाली लालसा, आर्थिक सुविधा और ऐश्वर्य, ऐसी ही कुछ बातों की ओर आज की भारतीय युवतियाँ सिमट कर रह गयी हैं। यह सच है कि समाज के कई क्षेत्रों में वे आज खुलकर भाग ले रही हैं और पहले की अपेक्षा आज वे कहीं अधिक उपयोगी कार्य भी कर ले रही हैं, किन्तु इन सब के मूल में कोई उच्च जीवन-दृष्टि नहीं है और न ही कोई नारी जीवन की पूर्णता की आकांक्षा। लगता है अपने देश की प्राचीन महीयसी नारियों—सीता, सावित्री और दमयन्ती—का आदर्श उनके लिए बेमानी हो गया है और आधुनिक संदर्भ से कटा हुआ-सा प्रतीत हो रहा है। मुझे लगता है, श्री श्री माँ सारदा का जीवन और आदर्श उनके लिए अपनी दिशा और दशा को जानने पहचानने में अधिक सार्थक सिद्ध हो सकेंगे।

श्री माँ सारदा के सम्बन्ध में रामकृष्ण मठ एवं मिशन के पूर्व अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज ने एक रोचक संस्मरण का उल्लेख करते हुए कभी कहा था, "जब श्री श्रीमायेर कथा' का प्रथम एवं द्वितीय खण्ड प्रकाशित हुआ तो मैंने दोनों खण्डों को बड़ी उत्सुकतापूर्वक पढ़ डाला। एक भक्त महिला—जो अक्सर माँ के पास आती थीं—ने श्री माँ की दैनिक घटनाओं को लिपिबद्ध कर रखा था। उक्त पुस्तक के प्रथम खण्ड में श्री श्री माँ के दैनिक जीवन की घटनाओं का वर्णन है और द्वितीय खण्ड में उनके उपदेशों का संग्रह है। दोनों खण्डों को पढ़ने के बाद मुझे द्वितीय खण्ड अधिक पसन्द आया। प्रथम

खण्ड भी निःसन्देह अच्छा था, लेकिन मैं यह नहीं समझ सका कि उसकी क्या विशेषता थी। जब पुस्तक का अंग्रेजी रूपान्तर हुआ और उसे अमेरिका भेजा गया तो पता चला कि अमेरिकन महिलाओं ने द्वितीय खण्ड की अपेक्षा प्रथम खण्ड को ही अधिक पसन्द किया। वे अपने आदर्शों के माध्यम से शान्ति नहीं पा रही थीं। अतएव इस बात की खोज में वे थीं कि भारतीय नारी पारम्परिक रूप से किस तरह का जीवन व्यतीत करती है। इसे वे माँ की जीवनी में पा गयीं। वे सब शान्ति-प्राप्ति का तरीका चाह रही थीं। यही कारण है कि उन लोगों ने प्रथम खण्ड को पसन्द किया।"

उपर्युक्त कथन बड़ा सटीक है और हमें अपने देश के वर्तमान नारी-समाज के जीवनादर्श के सम्बन्ध में भी सोचने को प्रेरित करता है। वस्तुतः पश्चिमी जगत की नारियों के पास वे सब वस्तुएँ हैं जिनकी हमारे देश की नारियाँ विकलता से अपेक्षा करती हैं। वे आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और शैक्षणिक स्तर पर काफी समृद्ध हैं। वैयक्तिक जीवन में भी वे बहुत स्वतंत्र, स्वच्छंद और उन्मुक्त हैं। लेकिन, फिर भी उनके जीवन में एक हाहाकार है, एक अभाव है। कोई गहरी कमी है उनके भीतर जो सारी सुख-सुविधाओं के बीच भी उन्हें कहीं से तोड़ रही है, बेचैन और अशान्त कर रही है। इसी से वे भारत की ओर लालायित नेत्रों से निहार रही हैं। और उन्हें श्री माँ सारदा के जीवन में वह सब कुछ मिल पा रहा है जिन्हें पाकर ही नारी सच्ची सही नारी हो सकती है। सुख और शान्ति से रह सकती है। स्वयं को धन्य कर सकती है।

ऐसा क्या है माँ के जीवन में जो वर्त्तमान नारियों के लिए उन्हें आदर्श बनाता है? और विशेषताओं को छोड़ भी दें और केवल एक विशेषता को ही लें तो हम पायेंगे कि श्री माँ विश्व-नारियों की आदर्श है। और वह विशेषता है उनका विश्व माता का रूप। वे बहुत पढ़ी लिखी नहीं हैं, वे भौतिक दृष्टि से असम्पन्न हैं, उनकी जीवन शैली आधुनिक नहीं है, सुख-सौविध्य का, भोग-विलास का कोई साधन या उपकरण उन्हें उपलब्ध नहीं है। मगर वह सही अर्थों में सुशिक्षिता हैं, आधुनिक हैं और जीवन की पूर्णता परिपूर्णता तथा धन्यता की प्रतिमूर्ति हैं। इन सब के मूल में है उनका विश्व-मातृत्व। उन्होंने अपने गर्भ से सन्तान उत्पन्न नहीं करने पर भी अपने हृदय को आकाश की भाँति विस्तृत और सागर की भाँति गहरा कर लिया। वत्सलता और करुणा के ज्वार उसमें उठते रहे। जो भी उनके निकट आया, उनके मातृत्व की पारिजात-छाँव से जुड़ा गया, परम तृप्त हो गया।

'माँ' शब्द के स्वाद-माधुर्य को श्री माँ ने सही-सही जाना था। और श्रीरामकृष्ण ने उनके मातृ-रूप को सही-सही पहचाना था। इसी से एक दिन स्वयं वे अपने शुद्ध सत्व बालक भक्त लाटू को लेकर माँ के पास ले जाते हैं और उनकी सेवा में लगा देते हैं। राखाल (बाद में स्वामी ब्रह्मानन्द) को भी ठाकुर ही माँ के सामने ले जाकर उपस्थित कर देते हैं और माँ हैं कि इन्हें ठीक अपनी सन्तान की भाँति अपने वात्सल्य की मंदाकिनी में नहा देती हैं। नरेन्द्र को मोटी रोटी और चने की दाल अच्छी लगती है। माँ उनके लिए वैसा ही पकाती हैं। किसी को खिचड़ी और किसी को पतली दाल अच्छी लगती है। माँ सबकी रुचि के अनुसार खाना अलग-अलग पकाती हैं। बालक सारदा अपने अभिभावक की इच्छा के विरुद्ध दक्षिणेश्वर आया करता है। घर लौटने के लिए अक्सर उसके पास पैसे नहीं होते। ठाकुर के निर्देश से वह नहबत के नजदीक जाता है। देखता है गाड़ी भाड़ा के हिसाब से चार पैसे चौखट पर रखे हैं। ठाकुर के कुछ कहने के पहले ही ये पैसे माँ रख आयी हैं। यह है माँ की शिशु वत्सलता।

बालक पूर्ण चन्द्र। श्रीरामकृष्ण के एक प्रिय भक्त। ठाकुर उन्हें माँ के निकट ले जाते हैं एक दिन। कहते हैं—'इसे माला और चन्दन से विभूषित कर खिलाओ।' फिर तुरत लौट कर कहा—"इसे यह तरकारी ज्यादा दो।" माँ वैसा ही करती हैं। पूर्णचन्द्र कहते हैं –'मैंने सोचा यह कोई नारी-भक्त हैं ठाकुर की। बाद में जब माँ को प्रणाम करने जाता हूँ तो देखता हूँ—यह वही हैं, हमलोगों की माँ।'

प्रसिद्ध नाटककार गिरीश घोष जयराम बाटी गये हैं। माँ के आगे वे एक छोटे बच्चे की भाँति हो गये हैं। और माँ! वे जानती हैं, गिरीश सुबह उठते ही चाय लेते हैं। गाँव में दूध नहीं मिल रहा। किन्तु माँ दूसरे से माँगकर अपने बच्चे के लिए दूध लाती हैं। गिरीश देखते हैं, उनके बिछौने की चादर रोज दपदप करती है। कौन इसे रोज साफ करता है? एक दिन देखा, श्री माँ स्वयं पोखर के घाट पर बैठकर साबुन से गिरीश की चादर फींच रही हैं। एक दिन वे श्री माँ से पूछते है –"तुम कैसी माँ हो?" माँ तुरंत उत्तर देती हैं—'मैं सचमुच की माँ हूँ, गुरु पत्नी नहीं, मान लेने वाली माँ नहीं, कहने की माँ नहीं—सच्ची माँ।'

माँ के एक संन्यासी सेवक आये हैं जयरामबाटी। वहाँ माँ के घर के समीप ही है बाड़ूज्या का पोखर। सभी उसमें स्नान करते हैं और उसी का पानी पीते हैं। माँ भी। यह संन्यासी-सेवक रोज आमोदर नदी में स्नान करने जाते हैं। एक दिन वे सोचते हैं, इस नदी का जल पोखर के पानी से अधिक स्वास्थ्यकर है। इसी का जल माँ को पिलाऊँगा। वे एक कलश में जल भरकर ले जाते हैं। सोचते हैं, माँ प्रसन्न होंगी। पर उल्टे जल को देखते ही माँ रोष में कहने लगीं – किसने तुम्हें यह जल लाने को कहा था? मैं तो बाड़ूज्या के पोखर का जल ही पीती हूँ। बड़ा मिठा जल है। तुम्हें जल नहीं लाना है।' लेकिन सेवक देखते हैं, विरक्त होने पर भी माँ ने उस नदी का जल ही सेवन किया। इसी से दूसरे दिन भी वे नदी का जल लाते हैं। उस दिन माँ और क्रुद्ध होती हैं।– "तुमने क्यों जल लाया है? किसने तुम्हें जल लाने को कहा? मैंने तुम्हें मना किया, तब भी तुम जल ले आये हो? बाड़ूज्या पोखर का मीठा जल ही मैं पीती हूँ। मेरे रोकने पर भी तुम नहीं मानोगे? जल नहीं लाना है।' सेवक ने देखा माँ ने उस दिन भी उसी नदी का जल सेवन किया। तीसरे दिन जल लाने पर वे और भी बोलने लगती हैं। सेवक ने दो दिनों तक कोई उत्तर नहीं दिया था। आज वे कहते हैं—'मैं नदी स्नान करने जाता हूँ। आपके लिए जल लाऊँगा। इच्छा हो तो आप पियें न हो तो नहीं पियें। मैं जल लाऊँगा ही।' माँ का सारा क्रोध बह जाता है। स्नेह से भरकर कहती हैं—'देखो बच्चा, जल लाते हो, तृप्तिपूर्वक पीती हूँ और जल अच्छा भी है। किन्तु इतनी दूर से जल लाने में तुम्हें कष्ट होगा, यही सोचकर तुम्हें मना किया था।" माँ की बात सुनकर सेवक स्नेहाभिभूत हो जाते हैं।

एक दिन, नित्य की भाँति, माँ ठाकुर के लिए भोजन का थाल ले जा रही हैं। एक महिला निवेदन करती है—मुझे थाल दो माँ, मैं ले चलती हूँ। माँ दे देती हैं। ठाकुर उस थाल का भोजन ग्रहण नहीं कर पाते। कारण, उस महिला का जीवन शुद्ध नहीं था। ठाकुर माँ से कहते हैं –'बोलो, फिर कभी किसी के हाथ में थाली तो नहीं दोगी!' माँ का हृदय। कहती हैं,—'यह वादा तो मैं नहीं कर सकूँगी। कोई यदि मुझे माँ कहकर पुकारे तो मैं फिर अपने को रोक नहीं सकूँगी।'

अमजद डकैत है। मुसलमान है। माँ उसे अपने घर पर खिलाती हैं। अपने हाथों उसका जूठा साफ करती हैं। कहती हैं, मेरे लिए अमजद वैसा ही है जैसा सरत् (स्वामी सारदानन्द)।

और यह प्रेम, यह मातृभाव केवल भारतवासियों के लिए ही नहीं है, विश्व के समस्त व्यक्तियों के लिए है, समस्त जीवों के लिए है।

अंग्रेज महिला भगिनी निवेदिता, अमेरिकन महिला सारावुल और जोसफिन मैक्लॉयड – सबने श्री माँ का अपार स्नेह, अपार वात्सल्य पाया था। इतना ही नहीं पशु-पक्षियों तक को माँ का वैसा ही प्रेम मिला।

ऐसी थी श्री माँ। वहाँ भाषा, रीति-नीति, देश और धर्म की भिन्नता की दीवारें ढह जाती थीं। अंग्रेज, अमेरिकी, मद्रासी इन सब की भाषा न माँ समझती थीं न माँ की भाषा वे सब। मगर आपस में सम्भाषण हो जाता था। मौन ही माँ का व्याख्यान था। प्रेम शब्द की अपेक्षा नहीं रखता। सेवा ही माँ का स्वरूप था। और सेवा धर्म की सीमा में आबद्ध नहीं होती। निश्छल त्याग ही माँ का आचार था। और यह त्याग देश-परदेश की सीमा में परिसीमित नहीं था। और इसी से माँ सत् की और असत् की, साधु की और असाधु की, पंडित की और मूर्ख की, स्वदेशवासियों की और परदेशवासियों की—सबकी माँ थी। अपनी और सच्ची माँ। यह था माँ के व्यक्तित्व का विस्तार। इसी से गर्भधारिणी माँ नहीं बनकर भी वे विश्वमाता थीं। वे आज भी विश्वमाता हैं। आज की नारियों को माँ के व्यक्तित्व की इसी त्रिकोणात्मक छवि ––निश्छल प्रेम, मुक्त सेवा, अनन्त त्याग—को अपनाना होगा। तभी वे पूर्ण नारी हो सकेंगी—मातृस्वरूपिणी। माँ नारियों को प्रेरणा दें कि वे उनके जीवनादर्शों में अपने को ढालकर स्वयं को धन्य कर सकें, तथा श्री माँ अपने चरणों में हमें अशेष प्रीति दें। यही उनसे मेरी प्रार्थना है।

●

# श्रीमाँ सारदा देवी के संस्मरण

– श्रीमत् स्वामी अभयानन्दजी महाराज
बेलुड़ मठ

[रामकृष्ण मठ के वरिष्ठ संन्यासी तथा न्यासी, ९९ वर्ष की आयु के परम पूजनीय भरत महाराज (स्वामी अभयानन्द) की यह अमूल्य स्मृति-कथा रामकृष्ण मिशन इन्स्टिट्यूट ऑफ कल्चर के द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'शतरूपे सारदा' से साभार गृहीत एवं अनूदित हुई है। अनुवादक हैं—बेलुड़ मठ में कार्यरत स्वामी निखिलेश्वरानन्द। · सं० ]

सन् १९१२ में मैंने श्री माँ सारदा देवी से मंत्र-दीक्षा प्राप्त की। उनका आश्रय मैंने कैसे पाया, यह बात बताने के लिए आवश्यक है, बेलुड़ मठ में मेरे प्रथम आगमन का वृत्तान्त बताना, वह बात बताना कि ढाका से कुछ दिनों के लिए बेलुड़ मठ आकर किस प्रकार मैं सदा के लिए यहीं रह गया।

ढाका में मैं एक क्रान्तिकारी दल के साथ संलग्न हो गया था। वह दल था – अनुशीलन समिति। उस समय मैं बालक था, उतनी समझ नहीं थी। अनुशीलन समिति का एक अड्डा ढाका में था – हॉस्टल के समान। घरबार छोड़कर आये हुए कुछ लड़के वहाँ रहते थे। कुछ दिन रहकर देखा, दल की कुछ-कुछ नीतियाँ मैं मन

से ग्रहण नहीं कर पा रहा हूँ। इसीलिए किसी ऐसे व्यक्ति के पास जाना चाहता था, जो इस विषय में मुझे ठीक परामर्श दे सके। कई कारणों से मेरे मन में रामकृष्ण मठ तथा मिशन के अध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्दजी से उपदेश प्राप्त करने की बात उठी। किन्तु किस माध्यम से उनके पास जाऊँगा ? फिर कौन उनके पास मुझे ले जाएगा ? इस विषय में सहायता की थी—मेरे मित्र वीरेन्द्र नाथ बोस ने।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी के साथ साक्षात्कार करने के लिए मैं उत्सुक था, यह बात वीरेन जानता था। एक-दिन, संभवतः दुर्गापूजा के बाद (सन् १९१० ?) वीरेन ने एक पत्र में लिखा कि वह कलकत्ता जा रहा है, यदि मैं चाहूँ, तो वह मुझे साथ ले जा सकता है। कलकत्ते से बेलुड़ मठ ले जाकर वह मुझे स्वामी ब्रह्मानन्द जी से भेंट करा देगा, यह आश्वासन भी उसने पत्र में दिया था। पत्र पाते ही मैं ढाका में उनलोगों के घर गया। दूसरे दिन हमलोग एक साथ कलकत्ते के लिए रवाना हुए। सियालदह स्टेशन पहुँचने के बाद वह मित्र मुझे बेलुड़ मठ ले गया। स्टीमर द्वारा गंगा पार कर सालकिया होकर पैदल मार्ग से हमलोग बेलुड़ मठ में उपस्थित हुए। मठ में सर्वप्रथम ही भेंट हुई स्वामी ब्रह्मानन्द जी के साथ। वे एक आराम कुर्सी पर बैठकर हुक्का पी रहे थे। हमलोगों ने प्रणाम किया। वीरेन ने स्वामी ब्रह्मानन्द जी से मेरा परिचय कराते हुए कहा—"कई दिनों से मेरा यह मित्र आपसे भेंट करना चाहता था। यह कुछ बातचीत करना चाहता है।" उसी के साथ वीरेन ने पूछ लिया कि मैं कुछ दिनों के लिए मठ में रह सकता हूँ कि नहीं। महाराज ने सम्मति प्रदान की। वीरेन कलकत्ता लौट गया। वीरेन के साथ तय हुआ कि कुछ दिनों के बाद उसके साथ ढाका लौटूँगा, तब-तक का समय मठ में बिताऊँगा।

मठ में मेरे रहने की व्यवस्था हो गयी, प्रतिदिन समयानुसार प्रसाद ग्रहण करने की भी। महाराज ने यह भी बता दिया कि ठाकुर के स्थान पर बिना कुछ कार्य किये अन्नग्रहण करना अनुचित है। निश्चित हुआ कि बाबूराम महाराज (स्वामी प्रेमानन्द जी) मेरे लिए जो कार्य ठीक कर देंगे, वही करना होगा, बाद में प्रसाद ग्रहण करूँगा। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने उपर्युक्त भाव मुझ में संचारित कर दिया था तथा मैं भी स्वामी प्रेमानन्द जी के निर्देशानुसार प्रतिदिन कुछ कार्य करता था। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने यह भी कहा था—"प्रतिदिन मेरे साथ घूमने चलना।"

वे मठबाड़ी से स्वामीजी के मंदिर तक घूमते थे—उस समय स्वामीजी के मंदिर के नीचे का अंश ही था, ऊपर का अंश बना नहीं था। घूमते समय हमारी बातचीत होती थी। मन में कई प्रश्न थे, जैसे कि साधु जीवन के सम्पर्क में। किन्तु उस समय जिस प्रश्न ने सबसे अधिक मेरे मन में अधिकार कर लिया था, वह था उस क्रान्तिकारी दल की नीति के संबंध में। वह एक संकट के समान था। एक दिन महाराज को सबकुछ स्पष्ट रूप से बताकर मैंने उनका मत जानना चाहा। स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने उस विषय में जो उपदेश दिया उसने मेरे मन में गहरी रेखा खींच दी। उनकी स्नेह-पूर्ण बातें भी बहुत अच्छी लगती थीं।

इस ओर सात दिन बीत गये किन्तु वीरेन का कोई पता नहीं चल रहा था। कुछ दिनों बाद एक पत्र मिला। उसने लिखा था कि विशेष प्रयोजन से उसे वर्धमान तथा वहाँ से कलकत्ता लौटकर शीघ्र ढाका लौट जाना पड़ा था, अतः मुझसे भेंट करने का समय उसे नहीं मिला। मुझसे मुलाकात नहीं हुई, इस बात पर खेद प्रकट कर उसने मुझे समयानुसार ढाका लौटने के लिए लिखा था। मैंने पत्र स्वामी ब्रह्मानन्द जी को दिखाया। पढ़कर उन्होंने कहा, "सच, वह तो चला गया ! जाने दो उसे, तुम्हारा एक मित्र चला गया, हम इतने मित्र तो यहाँ मौजूद हैं !" कभी-कभी वे कहते, "वीरेन ही तुम्हारा मित्र है, हमलोग क्या तुम्हारे मित्र नहीं बन सकते ?"

फिर भी लौट जाने की मेरी बहुत इच्छा होती थी। महाराज को यह बात बतायी। महाराज ने कहा—"अभी ही क्यों जाना चाहते हो? और एक माह रह जाओ न, स्वामीजी की जन्मतिथि आने वाली है, उस उत्सव तक रह जाओ।" मेरी उस समय लौटने की इच्छा तीव्र थी। जो हो, सोचा, महाराज ने कहा है, इसलिए स्वामीजी के जन्मोत्सव तक रहूँगा। स्वामीजी का जन्मोत्सव बहुत आनन्द में बीता। महाराज को यह बात बताने पर उन्होंने कहा—"यदि चले जाते तो यह आनन्द कैसे मिलता?"

स्वामीजी का जन्मोत्सव सम्पन्न हो जाने पर लौट जाने का प्रसंग फिर से उठाया। महाराज ने तब श्री रामकृष्णदेव की जन्मतिथि तक रहने को कहा। श्री रामकृष्णदेव का जन्मतिथि-उत्सव था—और एक आनन्द मेला। लगा, इस आनन्द की कोई तुलना नहीं है। इस उत्सव आनन्द में सम्मिलित होने के बाद मैंने अनुभव किया कि मन में घर लौट जाने की उत्कण्ठा और नहीं है। मन के भीतर से उस समय मानो एक नये राज्य की खबर सुन पा रहा था। अनुभव कर रहा था, वह राज्य मानो मेरा कितना अपना है। महाराज को और बोलना नहीं पड़ा, अपनी इच्छा से ही मठ में रह गया। अवश्य, उनके आशीर्वाद से ही यह संभव हुआ था।

मेरे संन्यास जीवन के प्रथम पर्व में, स्वामी ब्रह्मानन्द जी के अलावा और जिनका विशेष प्रभाव मुझ पर पड़ा था, वे हैं पूजनीय बाबूराम महाराज। आज भी मैं श्रद्धापूर्ण चित्त से उनका स्मरण करता हूँ। ऐसे प्रेमिक, गरीबपरवर, विशेषतः इतने कर्मठ संन्यासी को मैंने नहीं देखा था। बाबूराम महाराज की शुभेच्छा मथा प्रेरणा से ही मैंने श्री माँ की कृपा प्राप्त की।

तारीख ठीक याद नहीं, एक दिन बाबूराम महाराज के निर्देशानुसार मठ से कलकत्ता गया। बाबूराम ने कहा था, वे बलराम बाबू के घर पर रहेंगे। मुझे भी रात वहीं बिताने को कहा। शाम को वहाँ जाकर उपस्थित हुआ। जिस समय की मैं बात कर रहा हूँ, उस समय कलकत्ते में हमलोगों को रहने का और कोई स्थान नहीं था। संन्यासियों का अड्डा का अर्थ था बलराम बाबू का घर। यहाँ बेहिचक रह सकते थे, आहारादि भी किया जा सकता था। बीमार पड़ने पर भी वहाँ रहा जा सकता था। बलराम बाबू के परिवार के सभी लोग संन्यासियों का बहुत आदर-सत्कार करते थे। उस दिन शाम को बहुत लम्बे चेहरेवाले एक लड़के को, बलराम बाबू के घर पर देखा। बाबूराम महाराज का परिचित लगा, किन्तु मैं उसे कतई पहचानता नहीं था। बाबूराम महाराज ने मुझसे कहा—"देखो, यह आज अब आया है, तो तुझे एक कार्य करना होगा। लड़का कलकत्ता शहर से अनभिज्ञ है, कल फिर श्री श्री माँ के पास उसकी मंत्र दीक्षा होगी। तू कल सुबह उसे ले जाना। पहले 'उद्बोधन' भवन के सामने जो गंगा-घाट है, वहाँ जाकर स्नान करना, उसे भी कराना। इसके बाद शरत् महाराज के पास जाकर उसकी दीक्षा की बात कहना। कर सकेगा तो?" मैंने कहा—"हाँ, महाराज क्यों नहीं कर सकूँगा?"

नियमानुसार सो गया। भोर में ही सुनने को मिला—बाबूराम महाराज ने उठकर पुकारना शुरू कर दिया है—"वीरेन, उठ जा, उठ जा, शीघ्र जाना होगा।" उस लड़के का नाम वीरेन था। उसके बाद मुझे पुकार कर कहा—"उठ जा, मुँह-हाथ धो ले।" मैं उठ गया, मुँह-हाथ धोकर जाने के लिए तैयार हो गया। सीढ़ी पर तब भी अँधेरा था। सीढ़ी से जब उतर रहा था तब बाबूराम महाराज ने मुझसे कहा—"सुन, थोड़ा ठहर जा। क्यों रे, तेरी दीक्षा हुई है? तू भी दीक्षा ले ले। महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्दजी) से मेरी इस विषय में बातचीत हुई है, मुझे याद है, उन्होंने तेरी दीक्षा की बात कही है।" थोड़ा रुककर उन्होंने पुनः कहा -"मेरी सुनेगा? मेरी बात मानेगा?" "क्यों नहीं मानूँगा, कहिए महाराज," मैंने विनयपूर्वक कहा। उन्होंने कहा—"सुन, तू माँ के पास दीक्षा ले।" मैंने प्रश्न किया—"किन्तु माँ के पास दीक्षा लूँगा कैसे? वे मुझे अच्छी

तरह पहचानतीं नहीं। मैं जाता हूँ, प्रणाम करके ही चला आता हूँ।" बाबूराम महाराज ने कहा—"नहीं, वे तुझे पहचानती हैं।" "तो क्या कहूँगा उनसे ?" मैंने पूछा। उन्होंने निर्देश दिया—"तू शरत् महाराज के पास जाना, उनको जाकर कहना। सारदानन्द स्वामी तो तुझे पहचानते हैं ?" मैंने कहा—"हाँ, महाराज, वे मुझे पहचानते हैं। पूजनीय शशी महाराज (स्वामी रामकृष्णानन्द जी) जब बीमार अवस्था में 'उद्बोधन' में थे, तब मैं वहाँ पर था। कुछ दिनों के लिए उनकी सेवा की थी। उसी समय स्वामी सारदानन्दजी महाराज ने मुझे देखा है।" बाबूराम महाराज ने कहा - "हाँ, शरत् महाराज तुझे अच्छी तरह ही पहचानते हैं। तुझसे वे अत्यन्त सन्तुष्ट हैं। शशी महाराज की इतने दिनों तक सेवा की थी, उस समय कितना परिश्रम किया था। तेरे संबंध में उनकी बहुत अच्छी धारणा है।" मैंने कहा—"मैं यह नहीं जानता।" उन्होंने कहा—"जो हो, उसे साथ ले जा। और अपने लिए भी नयी धोती ले जा। दोनो गंगास्नान कर 'उद्बोधन' जाकर शरत महाराज से भेंट करना, कहना—" बाबूराम महाराज ने हमलोगों को भेजा है, आपको कहा है, श्री श्री माँ के पास हमलोगों की दीक्षा के बारे में कहने और उसके अनुसार सब व्यवस्था करने को।"

स्वामी ब्रह्मानन्दजी से मैंने पथ-निर्देश के लिए अनुरोध किया था। आनुष्ठानिक दीक्षा के लिए अवश्य अनुरोध नहीं किया था। तब भी आध्यात्मिक जीवन-गठन के लिए उनका उपदेश चाहा था। इसके अलावा इस मठ में उन्हीं के साथ मेरा प्रथम परिचय हुआ था। इसीलिए उनके पास दीक्षालाभ की आकांक्षा मन में रह गयी थी! किन्तु बाबूराम महाराज ने इस प्रकार जोर देकर कहा था कि अन्यथा करना संभव नहीं था। उन्होंने कहा था—"मुझ पर तेरा विश्वास नहीं है ? तू मुझे चाहता नहीं है ? देख, तेरे भले के लिए ही कह रहा हूँ, तू माँ के पास दीक्षा ले।" इस बात के उत्तर में भला मैं क्या कहता ? मैंने समझ लिया जो निश्चित हुआ है वही मान लेना होगा, एवं मानना ही उचित होगा। उनका आदेश अमान्य करना मेरे लिए असंभव था।

अतएव, यथासमय 'उद्बोधन' जाकर मैंने पूजनीय शरत महाराज से सभी बातें निवेदित कीं। वे तुरन्त बोल उठे—"हाँ, हाँ, (दीक्षा) अवश्य होगी।" मुझे श्री श्री माँ के पास ले जाकर उन्होंने मेरा परिचय करा दिया। मेरे साथ परिचय कराते समय, मैंने जो शशी महाराज की सेवा की थी, वह बात भी कही। श्री श्री माँ ने सब बातें सुनकर कहा—"हाँ बेटा, तुम्हारी दीक्षा होगी। जाओ, बेटा, नीचे जाकर बैठो, बाद में बुला लूँगी।"

यथासमय दीक्षा प्रारंभ हुई एवं एक-एक कर हमलोगों का बुलावा आने लगा। पहले मेरे साथी का बुलावा आया, फिर मेरा। माँ उद्बोधन के उसी कमरे में थीं जहाँ श्री श्रीठाकुर की पूजा होती है। श्री श्री माँ सर्वदा घूँघट से चेहरा ढककर रखती थीं। आज किंतु घूँघट नहीं था। आसन बिछाया हुआ था। कमरे मे प्रवेश कर उस आसन पर जाकर बैठा। आसन पर बैठने के बाद श्री श्रीमाँ ने मुझे कुछ प्रश्न पूछे। जहाँ तक स्मरण होता है, मेरे इष्ट के बारे में था या उसी प्रकार कुछ पूछा था। मैंने कहा था—"मुझे क्या अच्छा लगता है क्या नहीं, यह तो नहीं जानता। आपको जो अच्छा लगे वही मुझे दो, माँ।" माँ ने कहा—"ठीक है, ऐसा ही होगा।" उसके बाद उन्होंने कुछ समय तक ध्यान किया, तत्पश्चात् मुझे मंत्र प्रदान किया। मैं तो अवाक् हो गया! देखा कि इतने दिनों से जिस भाव को लेकर मैं हूँ, ठीक उसी भाव के अनुसार उन्होंने मंत्र प्रदान किया है। मैंने तो श्री श्रीमाँ को अपनी पसंद-नापसंद के संबंध में कुछ भी नहीं बताया था! उनकी इच्छानुसार ही मंत्र प्रदान करने का अनुरोध किया था। मेरी पसंद तो कितने ही प्रकार की हो सकती थी, किन्तु क्या ही आश्चर्य, जिस विशेष भाव को लेकर इतने दिनों तक अग्रसर हो रहा था, माँ ने ठीक उस भाव के अनुसार ही मुझे मंत्र प्रदान किया! श्री श्रीमाँ ने अपनी दिव्य-दृष्टि द्वारा मेरे मन की बात ठीक जान ली। इसके फलस्वरूप मेरे मन में काफी संतोष एवं आनन्द हुआ।

इस प्रकार मेरी दीक्षा हुई।

दीक्षा के बाद भी मैं बेलुड़ मठ में ही हूँ। गंगा के इस पार हैं हमलोग तथा उस पार हैं श्री श्रीमाँ और उनके लीला सहचर एवं सहचरियाँ। अभी के समान उस समय मठ से निकलकर इच्छानुसार आवागमन नहीं किया जा सकता था। इसके अलावा मठ की अपनी कोई गाड़ी भी नहीं थी। अतएव, इच्छा होने से ही श्री श्री माँ का दर्शन कर लिया जाय, ऐसा उस समय संभव नहीं था। अवश्य, जब बाबूराम महाराज किसी कार्य के लिए मुझे कलकत्ता भेजते उसी समय बोले देते—"माँ के घर (उद्बोधन) में प्रसाद ग्रहण (भोजन) करना तथा वहाँ जाकर श्री श्री माँ को प्रणाम करना।"

माँ को प्रणाम करना भी थी एक बड़ी समस्या। सर्वदा उनके इर्द-गिर्द महिलाएँ रहती थीं। इसीलिए दर्शन की बात पहले पूजनीय शरत महाराज को कहनी पड़ती। वे रासबिहारी महाराज(स्वामी अरूपानन्द) को बोल देते। रास बिहारी महाराज भक्तों को माँ के पास ले जाते थे। ऐसा नियम था। श्री श्री माँ और महिला भक्तों को सुविधा होगी, यह सोचकर दर्शन की बात बोलने में मैं हिचकता था। जो हो, बाबूराम महाराज के निर्देशानुसार शरत महाराज के पास जाकर दर्शन की इच्छा व्यक्त करता था और व्यवस्था हो जाती थी। श्री श्री माँ के कमरे में जाकर देखता, उनका चेहरा लम्बे घूँघट से ढँका है। मठ से आया हूँ यह सुनकर सिर से कपड़े को थोड़ा सा सरकाकर पूछतीं—"बेटा, मठ से आये हो? बाबूराम कैसा है? तारक (स्वामी शिवानन्द) कैसा है?" बाद में मठ के प्रत्येक व्यक्ति के सम्बन्ध में टटोलकर कुशल संवाद लेती थीं, यहाँ तक कि नौकर लोगों के सम्बन्ध में भी। माँ से सबकुछ कहना पड़ता था। किन्तु इस प्रकार घटता था किसी कार्य के अवसर पर, और इस प्रकार का अवसर भी कदाचित् ही मिलता था। श्री श्री माँ के घनिष्ठ सम्बन्ध में आने का या उनके पास रहने का सौभाग्य मुझे कभी प्राप्त नहीं हुआ।

श्री श्री माँ को एकबार मैंने दुर्गापूजा के समय बेलुड़ मठ में देखा था। उस बार पूजा के समय पूजनीय राखाल महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्दजी) मठ में उपस्थित नहीं थे। महापुरुष महाराज तथा स्वामी तुरीयानन्दजी भी नहीं थे। उत्सव के आयोजन के सबकुछ के मूल में थी बाबूराम महाराज की प्रेरणा। वे ही मुख्य आयोजक थे। और पूजा का सारा खर्च वहन किया था एक भक्त ने। उन दिनों नौका द्वारा प्रतिमा को लाया जाता था। पूजा होती थी श्री रामकृष्णदेव के पुराने मंदिर तथा मठवाड़ी के बीच के स्थान पर। उस स्थान को बाँस द्वारा घेर लिया जाता था तथा ऊपर त्रिपाल द्वारा ढक लिया जाता था। उस बार भी वहीं पूजा हुई। जहाँ तक स्मरण होता है, पूजनीय अभी महाराज के पिताजी श्री ईश्वर चन्द्र चक्रवर्ती तन्त्रधारक हुए थे।

बड़ी धूमधाम से तथा हर्षोल्लास के साथ पूजा सम्पन्न हुई। एक दिन समागत सभी भक्तों को प्रसाद खिलाने की व्यवस्था हुई थी। अवश्य, अभी की तुलना में उन दिनों भक्तों की संख्या कम थी। बेलुड़ मठ के निकटवर्ती अंचल में जो मछुए गंगा में मछली पकड़ते थे, उन सभी को खिलाने की व्यवस्था बाबूराम महाराज ने और एक दिन की थी। इन सब मछुओं की नावें मठ के घाट के पास ही रहती थीं, और वे लोग प्रतिदिन कुछ मछलियाँ मठ में दे जाते थे—बिना मूल्य। उस दिन उन सभी को उन्होंने आनन्द के साथ भरपेट प्रसाद खिलाया। उन गरीब मनुष्यों को श्री श्री ठाकुर का प्रसाद खिलाकर वे परम तृप्ति लाभ करते थे। मनुष्यों को, विशेषकर गरीब लोगों को ठाकुर का प्रसाद खिलाकर आनन्द प्राप्त करना—यह बाबूराम महाराज के अनन्य चरित्र का एक ध्यान देने योग्य पहलू था।

मठ में जो भक्त आते उनकी आवभगत करने की ओर उनकी विशेष दृष्टि रहती थी। वे कहते थे—"देख, वे लोग श्री श्री ठाकुर के पास आते हैं, तेरे या मेरे पास नहीं। तू निःसन्देह ठाकुर को प्रेम करता है। प्रेम करता है तो? अतः ठाकुर के पास

जो लोग आते हैं उन्हें भी उसी दृष्टि से देखना। प्रिय जनों के समान देखना, भक्ति-श्रद्धा के साथ देखना। सदा दृष्टि रखना ताकि उनके आदर-सत्कार में कोई त्रुटि न हो जाय।" लगता है, यह सब वे इसलिए करते थे ताकि उन लोगों के सम्बन्ध में हमारे मन में किसी प्रकार की उपेक्षा या विरक्ति का भाव न आ जाय। उनकी वह महत्, उदार, आश्चर्यमय प्रेमानुभूति मैं लक्ष्य करता था—मनुष्यों के प्रति प्रेम, प्रत्येक के प्रति प्रेम।

× × ×

बाबूराम महाराज की ऐकान्तिक प्रेरणा से जिस प्रकार श्री श्री माँ के पास से मुझे दीक्षा लेने का सौभाग्य मिला था, उसी प्रकार उन्हीं के विशेष आग्रह पर जयरामबाटी जाकर माँ के दर्शन तथा सान्निध्य का लाभ उठाने का भी सुअवसर एकबार प्राप्त हुआ था। यह सुअवसर प्राप्त हुआ था उस समय जब मैं मायावती में तीन-चार वर्ष रहकर कुछ दिनों के लिए बेलुड़ मठ आया था। मेदिनीपुर में बाढ़ के समय, वहाँ पर राहतकार्य करने के बाद मुझे मायावती आश्रम में कार्यकर्त्ता के रूप में भेजा गया था। बाबूराम महाराज की इच्छा नहीं थी कि मैं मायावती चला जाऊँ। उन्होंने मुझे आपत्ति करने को भी कहा था। किन्तु मैंने आपत्ति नहीं की। संचालकगण, स्वयं स्वामी ब्रह्मानन्दजी तथा स्वामी सारदानन्दजी ने जो निर्णय लिया था उसे बिना प्रतिरोध क्यों न मानूँ? मैंने अनुभव किया कि मेरे मायावती चले जाने से बाबूराम महाराज मन में क्षुब्ध हो उठे थे। अवश्य, उनका मेरे प्रति अहैतुक स्नेह ही उसके मूल में था।

जो हो, तीन-चार वर्षों बाद मायावती से कुछ दिनों के लिए मठ में आया था, उसी समय बाबूराम महाराज एक दिन सुबह मुझसे बोले—"तू तो अब यहाँ से दूर चला गया है। क्यों रे, यहाँ आया है, माँ का दर्शन हुआ है? कभी माँ के घर जयरामबाटी गया है?" मैंने कहा—"जी नहीं महाराज, इस बार दर्शन तो हुआ नहीं। जयरामबाटी कभी नहीं गया।" वैसे भी जयरामबाटी के सम्बन्ध में मुझे डर था। जयरामबाटी मुझे मच्छरों तथा मलेरिया की आवास भूमि प्रतीत होती थी। ऐसे स्थान पर जाने की मुझे अपने से कभी इच्छा नहीं हुई। तीर्थयात्री जिस श्रद्धा-भक्ति से तीर्थस्थानों पर जाते हैं, ऐसी भावना के साथ जयरामबाटी जाने का विचार मेरे मन में नहीं आया। बाबूराम महाराज ने कहा—"इस बार मायावती लौटने के पहले क्यों नहीं जयरामबाटी घूम आते?" किन्तु जाऊँगा कैसे, जाने के लिए पैसे चाहिए। मायावती लौटने के लिए जितना भाड़ा होता था, उतना ही मेरे पास था। तब फिर जयरामबाटी कैसे जाऊँगा? उनको यह बात बताने पर उन्होंने कहा—"पैसे के लिए तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है, वह व्यवस्था हो जायगी।" तत्पश्चात् शाम को मुझे बुलाकर उन्होंने कहा—"कल सुबह ही रवाना हो जा। श्रीरामपुर से एक सज्जन तथा एक महिला दीक्षा लेने के लिए जयरामबाटी जा रहे हैं। वे लोग तेरे लिए हावड़ा स्टेशन पर प्रतीक्षा करेंगे। उनलोगों के साथ तू जाना।" जाने के समय सब कुछ ठीक ठाक ही हुआ। उस सज्जन तथा महिला की दीक्षा वासन्ती पूजा की सप्तमी के दिन होने की बात थी, हमलोग पहले पहुँचे। उनलोगों ने सम्पूर्ण खर्च वहन किया—टिकट खरीदना आदि सब कुछ।

जयरामबाटी में उस बार श्री श्री माँ के घर में तीन-चार दिनों के लिए रहा। वहाँ पर उस समय एक और बलिष्ठ युवक भी था—मोटा-ताजा, देखने से ही मानो बेपरवाह लगता था। वह था सिलहट्ट का ज्ञान (स्वामी ज्ञानानन्द)। उसके साथ मेरा परिचय था। मुझे देखते ही उसने स्वागत किया—"आइए, आइए, उस ओर चलिए, माँ का दर्शन कर लीजिए।" जयरामबाटी के घर में क्या-क्या है, कौन किस कमरे मे रहता है, या कहाँ क्या होता है इत्यादि कुछ भी जानकारी मुझे नहीं थी। ज्ञान मुझे रसोईघर की ओर ले जा रहा है, यह देखकर मैं विस्मित हो रहा था। मैं प्रायः चिल्लाकर बोला—"यह तुम क्या कर रहे हो? रसोईघर में क्यों

ले जा रहे हो ? मैं माँ को प्रणाम करने तो आया हूँ किन्तु यदि वे रसोईघर में व्यस्त हों, तो मैं कार्य समाप्त होने तक प्रतीक्षा कर सकता हूँ।" किन्तु यह सब कहने से क्या होगा, ज्ञान को निरस्त नहीं किया जा सका। उसने मुझे रसोईघर में श्री श्री माँ के समक्ष हाजिर कर के ही दम लिया। मैंने वहीं माँ को प्रणाम किया। मैंने पूछा—"माँ, आप यहाँ क्या कर रही हैं ? रोटी सेंक रही हैं ?" उन्होंने कहा—"बेटा, यहाँ के लोग रोटी नहीं खाते। कलकत्ते से जब मेरे लड़के लोग आते हैं तब उन लोगों के लिए रोटी बनाती हूँ।" उस समय जयरामबाटी में कई अतिथि थे। उन लोगों के लिए श्री श्री माँ रोटी बना रही थीं। माँ ने मुझसे कहा—"जाओ बेटा, हाथ-मुँह धो लो। मैं थोड़ी देर में ही आती हूँ।" मैंने अपने संगियों का दीक्षा सम्बन्धी पत्र श्री श्री माँ को दिया। निश्चित हुआ कि सप्तमी के दिन उनलोगों की दीक्षा होगी। पहले ही कहा है, हमलोग उधर वासन्ती पूजा के समय गये थे।

जयरामबाटी में श्री श्री माँ को देखा भिन्न रूप में—कलकत्ता में 'उद्बोधन' भवन में जैसा देखा था ठीक वैसा नहीं। माँ वहाँ पर स्वच्छन्दतापूर्वक रहती थीं—घूँघट नहीं था। वे सरलता तथा पवित्रता की प्रतिमूर्त्ति थीं। सांसारिक गृहकार्य में निरत थीं। एक दिन भोर में देखा, हाथ में एक पात्र लेकर कष्टपूर्वक चल रही हैं। लगता है पैरों में वात होने से चलने में कष्ट हो रहा था। पात्र लेकर किसी पड़ोसी के घर की ओर जा रही थीं। रास्ते में मुलाकात होने पर पूछा—"इतने भोर में कहाँ जा रही हो, माँ ?" उन्होंने कहा—"दूध के लिए ग्वाले के घर जा रही हूँ। मेरे कलकत्ते के लड़कों को सुबह चाय पीने की आदत है, इसीलिए दूध लेने जा रही हूँ।" श्री श्री माँ स्वयं जा रही हैं दूध लाने के लिए ! विस्मित हो गया। उद्बोधन भवन में उन्हें चलने-फिरने का अवकाश नहीं था, अतः वहाँ नववधू के समान छिपकर रहने के लिए बाध्य होती थीं। किन्तु जयरामबाटी में वे हैं स्वाधीन और सर्वदा काम कर रही हैं—स्वयं ही सब काम कर रही हैं। जाते-जाते उन्होंने मुड़कर खड़े होकर कहा—"उस कमरे के बरामदे में सब्जी काटने के समय तुमसे मायावती की बातें सुनूँगी।" उनके सोने के कमरे के ठीक सामने सब्जी काटी जाती थी। उन्होंने पुनः कहा—"यहाँ तुम आना और मायावती की सब बातें, सबकुछ सुनूँगी।"

उनके कथनानुसार मैं समय पर उनके पास उपस्थित हुआ। वे सब्जी काट रही थीं और मैं मयावती की बातें करता गया। जिन तीन-चार दिनों तक मैं जयरामबाटी में रहा, उन सभी दिनों तक मायावती का प्रसंग चला था।

उन्होंने धर्म या अध्यात्म के सम्बन्ध में विशेष कुछ मुझे नहीं कहा, मैंने भी उन्हें कुछ नहीं पूछा। तब भी बातचीत के क्रम में बीच-बीच में वे कहतीं—"जहाँ भी रहो, जिस कार्य में सलग्न रहो, ठाकुर को सर्वदा पकड़े रहो।" वे अल्प शब्दों में उपदेश देती थीं। अपनी आध्यात्मिक अनुभूति के विषय में मुझसे उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा।

देहत्याग के पूर्व उनका अंतिम दर्शन मुझे हुआ था—उद्बोधन भवन में—उस समग वे अत्यन्त पीड़ित अवस्था में थी। उस समय श्यामदास कविराज महाशय नियमित उद्बोधन भवन में आकर उनकी चिकित्सा करते थे। उस समय उन्हें देखा था, प्रशान्त चित्त से सब रोगयंत्रणा को सहन कर रही हैं। सतीश महाराज—काशी के स्वामी सत्यानन्द के साथ मैं उन्हें प्रणाम करने गया था। बेलुड़ मठ से मेरे मायावती लौट जाने की बात थी। मैंने माँ के आशीर्वाद की याचना की। सब कुछ सुनने के बाद उन्होंने कहा—"बेटा, मैंने सुना है, मानस बड़ा दुर्गम तीर्थ है। बहुत सावधानी से रहना। जो कुछ करो सर्वदा ठाकुर को पकड़े रहो।" मानस के पथ पर मुझे एक आश्चर्यजनक दर्शन हुआ। स्वप्नदर्शन। इस सन्दर्भ में बोलना आवश्यक है, साधारणतः मुझे दर्शनादि का अनुभव नहीं होता।

मानसतीर्थ जाने के पथ पर अलमोड़ा जिले के भीतर एक स्थान पर हमलोग कुछ दिनों तक विश्राम

कर रहे थे। वहाँ कुछ परिचित व्यापारियों का हमने अतिथ्य ग्रहण किया था। एक छोटे से मकान में हमलोगों के आवास का प्रबन्ध हुआ था। वहीं पर प्रथम या द्वितीय रात में मैंने एक स्वप्न देखा। नींद टूटने पर घड़ी देख रहा था, इस समय रात के दो बजे थे।

स्वप्न में देखा श्री श्री माँ को। माँ मानो अपूर्व रूप से सजायी गयी हैं, दोनों चरणों को कुमकुम से रंगा गया है। परिधान में थी एक सुन्दर स्वच्छ साड़ी, गले में थी फूल की माला। माँ ज्योतिर्मयी प्रतीत हो रही थीं। माँ को जहाँ लाया गया था, इस स्थान को भी स्पष्ट देख पा रहा था। वह था गंगातट पर स्थित वह स्थान जहाँ अब माँ का मंदिर है। कई लोगों का समावेश वहाँ देखा। किन्तु माँ को वे लोग कंधों पर लाये हैं या गाड़ी में, यह समझ नहीं पाया। भीड़ में तीन लोगों को स्पष्ट देखा—माखन सेन, सुरेश मजुमदार तथा उसी दल के एक और सज्जन को, जिनका नाम अभी स्मरण नहीं कर पा रहा हूँ। आश्चर्य का विषय है कि द्वितीय बार यह दृश्य या माँ को केन्द्र कर अन्य कोई दृश्य स्वप्न में कभी नहीं देखा।

मानस से लौटते समय हमलोग ताकलाकोट में विश्राम कर रहे थे। ताकलाकोट व्यापार का एक बड़ा स्थान है। वहाँ इस समय साधारणतया वस्तु विनिमय विधि से व्यापार चलता था। अर्थात् भारतीय वस्तुओं के बदले में वहाँ चीजें मिल सकती थीं। ऊन या ऊनी वस्त्रों का आदान-प्रदान ही था प्रधान व्यवसाय। भारत के निवासी भुटियोर लोग भी अपनी वस्तुएँ ले जाकर व्यवसाय करते थे। भारत सरकार की ओर से एक कमिश्नर वहाँ निरीक्षण करने आते थे, उचित मूल्यांकन कर जाते थे। वे अपने कर्मचारियों के साथ एक विशाल तम्बू में रहते थे।

जाने के समय तो नहीं देखा, किन्तु लौटते समय इस अफसर को देखा। अफसर पंजाब के अधिवासी थे। जहाँ उनके साथ भेंट हुई। वहाँ से उनका तम्बू कुछ दूर था। उन्होंने मुझे अपने तम्बू में ले जाने का विशेष आग्रह किया। मुझे नमस्कार कर उन्होंने कहा—"महाराज, आपलोगों के लिए ही प्रतीक्षा कर रहा था।"

उनके तम्बू में जाकर हमलोगों को बड़ा आराम मिला। वहाँ एक-दो समाचार पत्र देखने को मिले। उन्होंने पहले हमलोगों को यह सब नहीं दिया। चाय पीने के बाद उन्होंने बताया रामकृष्ण संघ के लिए कुछ दुःखद समाचार है। पंजाब से प्रकाशित एक समाचार पत्र उन्होंने हमें पढ़ने दिया। दुःखद समाचार उसी पत्र में था। प्रथम समाचार था—श्री श्री माँ ने देहत्याग किया है। बहुत-कुछ विस्तार से यह समाचार प्रकाशित हुआ था। द्वितीय समाचार था—एक प्रख्यात नेता के परलोक गमन से सम्बन्धित।

इस प्रसंग में कहा जा सकता है, जिस रात को श्री श्री माँ के देहत्याग का स्वप्न मैंने देखा था, उसके दूसरे दिन सतीश को उसकी डायरी में लिखने को कह दिया था। यह समाचार पत्र में इस समाचार को देखने के बहुत पूर्व की बात है।

किन्तु और कभी श्री श्री माँ ने मुझे स्वप्न में दर्शन नहीं दिया। उन्हें स्वप्न में देखा है, वह एक बार ही—किन्तु वह दर्शन था अत्यन्त स्पष्ट। अत्यन्त स्पष्ट रूप से देखा था—उनका चेहरा, उनके नेत्र तथा उन्हें घेरे हुए सब लोगों को। याद है अपूर्व सुषमा से पूर्ण वह मुखमण्डल—मेरा स्वप्न में देखा माँ का वह मुख!

बाद में मिलाकर देखा ठीक इसी दिन श्री श्री माँ ने देहत्याग किया था।

# माँ सारदा

— श्री अयोध्येन्द्रदेव नारायण

दिव्यलोक की देवी, माँ सारदा वैराग्य की जीती जागती देवी मातृत्व की साकार प्रतिमा के रूप में, भक्ति के सजीव विग्रह से अन्तःकरण को प्रसन्नता एवं आनन्द से भरने के लिए इस धराधाम पर अवतरित हुई थीं। बंगाल के दरिद्र ब्राह्मण परिवार में श्री सारदामणि का जन्म अगहन की कृष्णा सप्तमी तिथि (२२ दिसम्बर १८-५३ ई०) को जयरामवाटी में हुआ था। माँ श्यामासुन्दरी लक्ष्मी जैसी प्रथम कन्या के आगमन से निहाल हो उठीं। पिता श्री रामचन्द्र के भक्तिविनम्रचित्त पर दैववाणी की स्मृति जाग उठी। सदा हँसमुख, लीला चंचल सम्मोहिनी शक्तियुक्त, कमनीय आँखों वाली देवी सारदा, भगवत् स्वरूप श्री रामकृष्ण परमहंस की अभिन्न सहचरी बनी जीती जागती दुर्गा के रूप में संपूज्या हैं। अयोनिजा माँ सीता की भाँति माँ सारदा भी अलौकिक रीति और ईश्वरेच्छा से आविर्भूत हुई थीं। अपने जन्म के सम्बन्ध में स्वयं माँ का कथन है—"मेरा जन्म भी उसी प्रकार (श्री रामकृष्ण देव की तरह) का है। मेरी माँ शिहड़ नामक स्थान में देव-दर्शन के लिए गयी थीं। लौटते समय जयरामवाटी की पश्चिम सीमा पर किसी देवालय के समीप एक वृक्ष के नीचे अकस्मात उन्हें शौच जाना पड़ा। शौच नहीं हुआ, पर उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि उनके उदर में किसी प्रकार की वायु के प्रविष्ट होने से उनका पेट अत्यन्त भारी हो उठा। फिर भी वे बैठी ही रहीं। इतने में उन्होंने देखा कि लाल साड़ी पहने हुए एक पाँच-छः वर्ष की सुन्दरी बालिका वृक्ष से उतर कर उनके समीप आयी और अपनी कोमल भुजाओं द्वारा पीठ की ओर से उनका कण्ठवेष्टन करती हुई कहने लगी—"माँ, मैं तुम्हारे घर आयी हूँ। मेरी माँ उस समय बेहोश हो गयी। लोग उन्हें घर उठा लाये। यही बालिका मेरी माँ के पेट में प्रविष्ट हुई थी। उसी से मेरा जन्म है। घर लौटकर माँ ने यह घटना बतलायी थी।" इस तरह भगवती सारदा बनीं। तभी तो श्री रामकृष्ण कहा करते थे—"यह शारदा है—सरस्वती है। ज्ञान देने के लिए आई है। यह मेरी शक्ति है।" अपनी स्त्री को वे मानवी रूप में जगदम्बा ही मानते थे एवं षोडषी देवी कहकर उनकी पूजा भी करते। इस विलासिता के युग में भौतिकेतर-आध्यात्मिक विवाह की सत्यता माँ सारदा ने प्रमाणित की। पत्नी भगवती कुमारी सारदा देवी ने पवित्रता, सतीत्व और जगन्मातृत्व का आदर्श उपस्थित कर श्री रामकृष्ण को मानव रूप में जगदीश्वर का स्वरूप समझकर ही उनकी सदैव भक्ति की। धार्मिक संसार के इतिहास में इस प्रकार के आध्यात्मिक विवाह का अन्य कोई प्रमाण नहीं मिलता। इस तरह मातृत्व की परमानन्दिनी शक्ति का आदर्श स्थापित कर आध्यात्मिक जगत में स्त्री को, गुरु मानकर सतीत्व के आदर्श को, अत्युच्च स्थान श्री रामकृष्ण परमहंसजी ने प्रतिष्ठित किया है। अलौकिक शक्ति संपन्ना माँ सारदा का जीवन इन्द्रियों के विषयों से बहिर्मुख होकर परमानन्द में लीन रहने वाला रहा है। इनके जीवन का प्रत्येक पल अध्यात्म सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्णता की ओर उन्मुख साधना का परिष्कृत सम्मिश्रण रहा है। इनका अनुकरणीय चरित्र युग-युग तक आत्मिक संशयों को दूर करने वाला परम सत्य तक पहुँचाने का सिद्ध सोपान है। इस तरह यह स्वतः स्पष्ट होता है कि श्रीराम की सीता, श्रीकृष्ण की राधा, बुद्ध की यशोधरा और चैतन्य महाप्रभ की विष्णुप्रिया की तरह—वर्त्तमान युग में महा दिव्य शक्ति माँ सारदा के रूप में श्री रामकृष्ण परमहंस

के दैवी कार्य को संपन्न करने में सहायिका बनकर अवतरित हुईं। नारी दिव्य शक्ति की अभिव्यक्ति बनकर ईश्वर की लीला को उजागर करने वाली होती है। इस तरह आध्यात्मिक साधकों में स्फूर्ति भरने वाली माँ सारदा की लीला की कुछेक घटनाओं के क्रम के अवलोकन से दिव्य शक्ति का अनुभव स्वयमेव होने लगता है।

अल्पवयस्का बालिका अपनी एक आत्मीया की गोद में थी। संगीत समाप्त होते ही उन्होंने उस बालिका से पूछा—"इतने लोगों में से तुम किससे शादी करना चाहती हो? यह सुनते ही बालिका ने अपने दोनों हाथ उठाकर समीप बैठे हुए प्रभु गदाधर (श्री रामकृष्ण) को दिखा दिया।" इस तरह एक छोटी बालिका अपने भावी पति की ओर संकेत करती है—यह अत्यन्त ही विस्मयकारी घटना है। किन्तु, भगवती स्वरूपा के लिए यह मात्र एक लीला विलास ही तो ठहरा!

विवाह के समय माँ सारदा छः वर्ष और गदाधर २४ वर्षों के थे। वस्तुतः श्री रामकृष्ण देव के साथ श्री सारदा देवी का जो मिलन हुआ—वह विवाह नहीं वरन् दैहिक सम्बन्ध रहित दो आत्माओं का परस्पर मिलन है। इसमें न दैहिक सुख का संस्पर्श था और न प्रजनन की आकांक्षा ही। इस मिलन से दाम्पत्य जीवन के सम्बन्ध में एक अभिनव आदर्श की शिक्षा मिलती है। इस घटना से आत्मिक कल्याण का निखरा स्वरूप प्रकट होता है। यह एक पूर्ण एवं सफल दाम्पत्य जीवन की मर्यादा है।

"स्त्रिय : समस्ताः सकला जगत्सु"

सारदा देवी नित्य सिद्धा महामानवी थीं। जिस समय माँ दक्षिणेश्वर आयीं वे उन्नीस वर्ष की थीं। दैहिक सम्बन्ध रहित केवल आत्मिक मिलन से भी पुरुष और नारी में गहरा प्रेम सघन रह सकता है—इस दृष्टान्त से यह संसार को देखने को मिलता है। जिस प्रकार श्री रामकृष्ण ने अपनी पत्नी से प्रश्न कर उनकी परीक्षा ली थी—उसी तरह सारदा देवी ने भी पतिदेव की चरण सेवा में लीन रहते हुए यह पूछा था—"अच्छा तुम मुझे किस दृष्टि से देखते हो?" श्री रामकृष्ण ने निःसंकोच भाव से उत्तर दिया "जो माँ मन्दिर में विद्यमान है, वे ही अभी मेरे पैर दबा रही हैं। मानव में साक्षात आनन्दमयी के रूप में तुम्हें मैं देखता हूँ।" यह तो विशुद्ध आत्माओं का अपार्थिव संयोग, शिव-शक्ति का अद्भुत मिलन है। माँ के कामगन्धहीन चरित्र की प्रशंसा करते हुए श्री रामकृष्ण ने कहा था—"यदि यह (श्री माँ) इतनी भली न होती और विवेक खोकर मुझपर जबर्दस्ती करती तो कौन कह सकता है कि मेरा संयम बाँध टूटकर मुझमें देह-बुद्धि आती या नहीं।" दोनों की समर्पण-भावना पृथक नहीं थी—शिव-शक्ति एक हो चुके थे। सन् १८७२ की ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या को फलहारिणी देवी के पूजन के दिन माँ का षोड़शोपचार पूजन श्री रामकृष्ण देव ने किया था। इस तरह समाधिमग्न पूजक, समाधिस्थ देवी के साथ आत्मस्वरूप में मिलकर एक हो गये। परमहंसजी ने देवी के चरणों में आत्मनिवेदन समर्पित कर प्रणाम करते हुए यों मंत्रोच्चार किया था—"सर्व मंगल मांगल्ये, शिवे सर्वार्थसाधिके। शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते।" यही माँ के दीपित दाम्पत्य जीवन का पूर्ण परिचय है। लीलामयी माँ ने पत्नी रूप से जितनी लीलाएँ की हैं—वे बहुत ही मधुर हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मणकुल का श्रेष्ठ विकास इनके जीवन में कमल की तरह खिलकर गंध लुटाता रहता था—आज भी लुटा रहा है।

सन् १८७२ के मार्च से १८८६ के अगस्त महीने की अवधि श्री माँ के जीवन का कठोर साधना-काल रहा है। श्री रामकृष्ण की सेवा ही उनकी तीव्र साधना थी। सेवा से ही अभेद-ज्ञान विकसित हुआ था। अपने शरीर की ओर इंगित कर माँ ने कहा था—"इसके अन्दर सूक्ष्म शरीर से वे ही विद्यमान हैं। ठाकुर ने स्वयं ही कहा है—मैं तुम्हारे अन्दर सूक्ष्म शरीर से रहूँगा।" दोनों स्वरूपतः एक थे। एक बार की घटना है—श्री माँ उस समय उद्बोधन कार्यालय में थीं। संन्यासी पुजारी को [illegible]

श्री ठाकुर के चरणामृत लेकर आये। देखते ही माँ ने पूछा—"दो अलग-अलग किसका ?"

पुजारी ने कहा—एक में ठाकुर का, दूसरे में माँ सिद्धेश्वरी का।"

श्रीमाँ ने आदेश दिया—"दोनों एक ही हैं, मिला दो।"

पुजारी बोले—"अच्छी बात है, कल से ऐसा ही करूँगा।"

श्रीमाँ ने पुनः कहा—"नहीं अभी मेरे सामने ही मिला दो।"

"दोनों देवताओं का चरणामृत एक साथ मिलाकर श्री माँ ने ग्रहण किया।" इससे यह प्रमाणित होता है कि वे स्वयं सिद्धेश्वरी देवी थीं।

अस्सी वर्ष के वृद्ध तपस्वी स्वामी शिवानन्द ने भाव विह्वल होकर श्री माँ की जन्म-तिथि पर प्रार्थना की थी—"माँ ! माँ !महामाया ! जय माँ ! जय माँ !हमलोगों को भक्ति-विश्वास, ज्ञान-विवेक, अनुराग-ज्ञान-समाधि दो। ठाकुर के इस संघ का कल्याण करो—दुनिया में शान्ति स्थापित करो। हमलोगों में भक्ति नहीं है, इसीलिए इन सब दिनों का ठीक-ठीक माहात्म्य नहीं समझ सकते। आज क्या ऐसा-वैसा दिन है ? महामाया का जन्मदिन है। जीव-जगत के कल्याण के लिए आज के दिन स्वयं महामाया ने जन्म ग्रहण किया था। मानव-लीला समझना बड़ा कठिन है। वे कृपा करके यदि न समझा दें, तो कौन समझ सकता है ? वे किस प्रकार साधारण भाव में रहती थीं हमलोग भला उन्हें क्या समझें ? एकमात्र ठाकुर ने ही माँ को ठीक-ठीक पहचाना था। हमारी माँ का नाम है सारदा। ये माँ ही स्वयं सरस्वती हैं। वे कृपा करके ज्ञान देती हैं—ज्ञान अर्थात् भगवान को जानना। यह ज्ञान होने पर ही ठीक-ठीक सच्ची भक्ति संभव है। ज्ञान के बिना भक्ति नहीं होती। शुद्ध ज्ञान और शुद्धा भक्ति एक है। माँ की कृपा से ही वह होना संभव है। माँ ही ज्ञान देने की स्वामिनी हैं।" उपर्युक्त कथन से माँ सारदा का देवी रूप उजागर होता है।

एक बार माँ से एक संन्यासी सन्तान ने पूछा—"क्या चित्र में ठाकुर हैं ?"

श्री माँ—क्या नहीं हैं, छाया-काया समान है। चित्र तो उनकी छाया है।"

संन्यासी—"क्या वे सभी चित्रों में हैं।

श्री माँ—"हाँ, पुकारते-पुकारते चित्र में उनका आविर्भाव होता है। उनकी पूजा का स्थान एक पीठ बन जाता है। जैसे इस जगह में, मान लो किसी ने उनकी पूजा की। तो यह उनका एक स्थान बन जायगा। उस स्थान पर उनकी दृष्टि रहेगी।"

संन्यासी—अच्छा, ठाकुर को जो सब नैवेद्य देती हो, वह क्या ठाकुर खाते हैं।"

श्री माँ—"हाँ, खाते हैं।"

संन्यासी—"कहाँ, कोई चिह्न तो नहीं देखता।"

श्री माँ—"उनकी आँखों से एक ज्योति निकल कर सब चीजों को ग्रहण करती है। उनके अमृत स्पर्श से वह सब फिर से पूरा हो जाता है, इसीलिए कम नहीं होता।"

कुछ रुककर माँ फिर कहने लगीं—"जहाँ भक्त लोग पुकारते हैं, वहाँ भगवान वैकुण्ठ से उतर आते हैं। शरद् पूर्णिमा के दिन लक्ष्मी वैकुण्ठ से पृथ्वी पर आती हैं। जहाँ-जहाँ उनकी नजर रहती है वहाँ-वहाँ जाती हैं और पूजा ग्रहण करती हैं। मेरी सास ने कामारपुकुर मे (लक्ष्मी को) देखा था— चौदह-पन्द्रह साल की लड़की के रूप में, गोरा रंग था, कानों में शंख के कुण्डल थे और हाथों में हीरे के कंगन। बकुल के नीचे (ठाकुर के घर के सामने) खड़ी हो उनके साथ उन्होंने बातचीत की थी।"

इस तरह नाना प्रकार की लीला करती, दुखियों को सुख पहुँचाती, भक्ति दान करती हुई—प्रशान्त-स्थिर-गंभीर अन्तर्मन में गहरी समाधिलीन रहने वाली माँ सारदा

सन् १९२० की जुलाई की २०वीं तारीख मंगलवार की रात में १। बजे शिवयोग से ६६ वर्ष ७ महीने की आयु में पराशक्ति श्री माँ का परमशिव श्री रामकृष्ण के साथ चिर मिलन हो गया। उनका यह उपदेश सदैव मार्ग-दर्शन करने वाला है—"यदि शान्ति चाहो तो किसी का दोष मत देखना। दोष देखना अपना। संसार को अपना बना लेना सीखो। कोई पराया नहीं है—सारी दुनिया तुम्हारी अपनी है।"

माँ की अन्तिम शान्ति वाणी थी—"ठाकुर हैं, मैं हूँ, फिर भय कैसा ?"

श्री माँ की यह अभय वाणी जन-जन के हृदय में सदैव गूँजती रहेगी।

इस तरह माँ ने अपने प्रभाव से नारी की शाश्वत मर्यादा स्थापित कर दी है। माँ सारदा ही योगमाया स्वरूपा ज्ञेय और ज्ञान के द्वार हैं। अतः इनका गुण-गान करते हुए चिन्तन करते रहने से भक्ति की सरिता निरन्तर बहती मिलेगी। ऐसा अखण्ड विश्वास सदैव बल भरता है।

# मैं हूँ आपकी सारदा

"पिताजी ! सब गङ्गा-स्नान करने जा रहे हैं। मैं भी चली जाऊँ ?"

"परंतु बेटी ! तू इतना अधिक चल सकेगी ?"

"क्यों पिताजी ! पिछली बार तो हम सब गये थे न ?"

"परंतु तुझे स्मरण है कि मार्ग में तुझे तीव्र ज्वर आया था। यह तो संयोग की बात थी कि मैं तुम्हारे साथ ही था, नहीं तो उस बीहड़ जंगल में तेरा क्या होता ! नहीं बेटी ! तुझसे चला नहीं जायगा और मैं इस समय जाने की स्थिति में नहीं हूँ। ऐसी दशा में तुझे अकेली कैसे जाने दूँ ?'

'मैं अकेली कहाँ हूँ ? इतनी सब स्त्रियों का समूह जा रहा है और उन सबसे तो आप परिचित ही हैं। तो पिताजी मैं जाऊँ न ?'

पिता पुत्री की कलकत्ता जाने की उत्कट इच्छा को देख रहे थे। अब उनकी समझ में आया कि गङ्गा-स्नान की अपेक्षा दक्षिणेश्वर के काली-मन्दिर में साधनरत अपने पतिदेव के दर्शन करने की पुत्री में विशेष उत्कण्ठा थी। इसलिये सदैव पुत्री की इच्छा को संतुष्ट करनेवाले पिता ने इस बार भी पुत्री की इच्छा का अनादर नहीं किया। साथ की चार-पाँच स्त्रियों को विशेष सँभाल रखने को कहकर उन्होंने पुत्री को कलकत्ता जाने की आज्ञा दे दी।

उस समय जयरामवाटी से कलकत्ता पैदल चलकर जाना सरल नहीं था। उस समय नहीं था रेलवे का आरामदायी यात्रा-साधन और नहीं थी बस की सुविधा-पूर्ण यात्रा तथा मार्ग भी स्वच्छ नहीं था। जंगलों को पार करते-करते, नदी-नाले लाँघते-लाँघते, चोर-डाकुओं एवं जंगली जानवरों से डरते-डरते यात्रियों को पैदल ही मार्ग तय करना पड़ता था। इतने पर भी यात्री साहस रखते हुए गङ्गा-स्नान करने बराबर जाते रहते। इस बार गाँव की बहुत अधिक स्त्रियों को तैयार हुई जानकर सारदामणि को भी उनके साथ जाकर पति के मुखारविन्द के दर्शन करने की इच्छा हो गयी थी।

शुभ मुहूर्त देखकर संघ ने प्रयाण किया। जयरामवाटी से कामारपुकुर होकर वहाँ से आठ मील दूर आरामबाग में रात्रि-विश्राम करने का सबका निश्चय था। यात्रा प्रारम्भ हुई, अतः सबकी चाल में उत्साह था। हृदय में श्रद्धा का बल था। भक्ति के गीत गाते-गाते सब तेजी से चले जा रहे थे। इतने में तो आरामबाग आ गया, परंतु अभी कोई थका नहीं था। सब कहने लगे—'अभी तो सूर्यनारायण अस्त होने की स्थिति में पहुँचे ही नहीं हैं, अभी तो इतना अधिक प्रकाश है। रात्रि होने में तो अभी लगभग तीन घंटे का विलम्ब है। चलते चलो, यहाँ रात्रि-विश्राम नहीं करना है। शीघ्र चलते रहो, सूर्यास्त तक तो तेलोभेला और कैंकले के मैदानों को पार कर लेंगे। फिर कोई भय नहीं रहेगा तो निश्चिन्त सो जायँगे।'

जायँ तो तेरे पिता को जाकर क्या उत्तर दूँगी?'

'माँ! आप तो जानती हैं कि मुझे अपने ठाकुर के दर्शन करने हैं, इसीलिये इतना कष्ट उठा रही हूँ।'

'यह बात तूने पहले ही क्यों नहीं बतायी। हमलोग आरामबाग में ही रुकी होतीं, यही हमारे लिये अच्छा पड़ता।।

'मेरे मन में यह था कि धीरे-धीरे आपके साथ चली चलूँगी।'

'परंतु इस प्रकार चलने से तो जंगलों में ही रात्रि हो जायगी।

'अरी माँ! हमारी तो स्त्रियों की जाति। अकेले घोर जंगल को कैसे पार कर सकेंगी। बागदी लुटेरे चाहे जहाँ मिल जाते हैं और यात्रियों की कितनी-कितनी

---

कैसा था अटल विश्वास! और इस विश्वास का कैसा सुखद-सुन्दर परिणाम! जिसे दूर से ही देखकर भले-भले थरथराने लगते थे और कितनों का साक्षात् यमदूत-सा दिखाई देनेवाला वह पुरुष हाथ में लाठी लिए पुत्री सारदा की रक्षा के लिए रात्रि भर पहरा देता खड़ा था।

---

पूरा संघ भजन-कीर्तन करता तीव्र गति से चल पड़ा। डाकुओं के भय की कल्पना से उनकी गति में तीव्रता थी, परंतु यह क्या? स्त्रियों का एक समूह इतनी धीमी गति से क्यों चल रहा था? पीछे पलटकर किसी ने देखा तो चार-पाँच स्त्रियाँ धीरे-धीरे आ रही थीं। 'अरे ओ विश्वास की माँ! तुमलोग जल्दी-जल्दी चलो, इस प्रकार चलने पर तो यहीं बीच मार्ग में रात्रि हो जायगी।'

'हाँ, मासी माँ, दीदी मणि, माँ ठकुरानी! आप सब शीघ्रता से चलकर संघ के साथ हो जाओ। मुझसे अब बिल्कुल नहीं चला जा रहा है। मैं तो बहुत अधिक थक गयी हूँ। मेरे पग अब आगे बढ़ते नहीं हैं। आप सब आगे जाओ।'

'परंतु तू साथ क्यों आयी थी? तुझे छोड़कर चली

दुर्दशा करते हैं, यह तो तूने सुना ही होगा।'

'अरे तुमलोग जल्दी चलो, थोड़ा झट्ट से पग उठाओ। हम तुम्हारी प्रतीक्षा कहाँ तक करेंगी।' ऐसा कहकर आगेवाली मण्डली तो लगभग दौड़ने ही लगी। यह देखकर अन्य स्त्रियों में भी जोश आया और उन्होंने भी गति बढ़ायी, परंतु सारदामणि की गति किसी भी उपाय से नहीं बढ़ी। उसके पैर सूज गये थे: एक-एक डग भरते उसे अपार वेदना हो रही थी। वह बिल्कुल चल नहीं पा रही थी और साथ ही स्त्रियाँ उसे जल्दी चलने का आग्रह कर रही थीं। अन्त में सारदामणि ने ही उनसे कहा—

'माँ! आप सब आगे जाओ। व्यर्थ ही मेरे लिए आप सबको भी कष्ट में पड़ना होगा। मैं तो अकेली-अकेली धीरे-धीरे चली आऊँगी।'

'अरी माँ ! तू अकेली-अकेली कैसे चलेगी ? मार्ग में लुटेरे मिलेंगे तो भय से घबराकर तू मर नहीं जायगी ?'

'नहीं माँ ! मुझे कुछ होनेवाला नहीं है । इस समय मैं बहुत थक गयी हूँ । अब मुझसे एक कदम भी चला नहीं जायगा । आप सब जल्दी-जल्दी चलकर मण्डली का साथ पकड़ लें ।' सारदामणि ने आग्रह-भरे स्वर में प्रार्थना की ।

'ठीक, तू कहती है तो हम जल्दी-जल्दी चलकर दिन रहते जंगल पार कर लेंगी । तू धीरे-धीरे चलकर फिर हमारे साथ हो जाना ।' ऐसा कहकर और सारदामणि को अकेली छोड़कर वे सब स्त्रियाँ शीघ्रता से चलती हुई झाड़ियों में कहीं अदृश्य हो गयीं । इन झाड़ियों में अकेली रही सारदामणि । सूर्य तेजी से अस्ताचल जा रहे थे और अभी जिसने सोलह वर्ष भी पूरे नहीं किये थे, वह सारदामणि धीरे-धीरे चली जा रही थी ।

तभी घोर अन्धकार को चीरती हुई एक काली भयानक विकराल आकृति सारदामणि की ओर आती दिखायी दी । इस आकृति के समीप आने पर सारदामणि ने देखा कि वह एक ऊँची, काली विकराल भयानक मानव आकृति थी । उसके हाथ में कड़े पड़े थे और कंधे पर मोटी लाठी रखी थी । अंगारे-जैसी जलती आँखें चमक रही थीं । अरे ! यह तो अवश्य बागदी लुटेरा है । सारदामणि को पहचानते देर नहीं लगी । जिसके भय से भले-भले पसीना छोड़ बैठते थे, जिसकी यातना के भय से सब शीघ्रता से चले गये थे, वही कालदूत-जैसा लुटेरा आ पहुँचा था । उसे देखकर सारदामणि रुक गयी । वह धीरे-धीरे चल रही थी, अब स्थिर हो गयी । उसे वहाँ रुकी देखकर लुटेरे ने डाँटकर कहा—'अरे, यहाँ कौन खड़ा है ? कहाँ जाना है तुझे ?' जिसकी एक डाँट सुनकर भले-भले बेहोश हो जाते थे और वहाँ तो यह स्त्री की जाति ! इसकी तो हिम्मत ही कितनी ?'

परंतु वहाँ तो शान्त, निश्चल, मधुर स्वर सुनायी दिया—'बाबा ! मुझे पूर्व की ओर जाना है ।'

इस स्वर में न भय था, न क्रन्दन, परंतु वहाँ था मधुर प्रेम का स्पन्दन और 'बाबा' का ऐसा प्रेमपूर्ण सम्बोधन कि लुटेरे ने अपने जीवन में प्रथम बार ही सुना था । अन्तःकरण से उठे इस सम्बोधन ने लुटेरे के अन्तःकरण में मानो एक विचित्र झनझनाहट उत्पन्न कर दी हो । वह विवश-भाव से समीप आ गया । उसने सारदामणि को अच्छी तरह देखा और एक क्षण पूर्व का उसका कठोर स्वर एकदम कोमल बन गया । इसकी क्रूरता, जंगली स्वभाव और वैर-भावना न जाने कहाँ अदृश्य हो गयी ? और वह बोल उठा—'माँ ! डरो मत, मेरी स्त्री पीछे-पीछे आ रही है ।'

सारदामणि ने देखा कि सचमुच दूर से एक स्त्री आ रही थी । इसलिए उसका विश्वास बढ़ा । इसने हाथ जोड़कर उस व्यक्ति से कहा—'बाबा ! अब मुझे भय किसका ? अच्छा हुआ कि आप और माँ इस समय यहाँ पहुँच गये । मैं बहुत थक गयी थी, इसलिये मेरे साथी मुझे छोड़कर आगे चले गये । मुझे लगता है कि मैं मार्ग भूल गयी हूँ, परंतु अब मुझे चिन्ता नहीं है । आपके जमाई दक्षिणेश्वर के काली-मन्दिर में पुजारी हैं । आप मुझे उनके पास पहुँचा देंगे ? वे भी आपसे मिलकर बहुत प्रसन्न होंगे ।'

लुटेरे को लगा कि वह यह मधुर स्वर सुनता ही रहे, परंतु तबतक तो उसकी स्त्री वहाँ आ पहुँची । अँधेरी रात्रि में यह अकेली स्त्री कौन होगी और उसके पति से क्या कह रही होगी ? उसके मन में ऐसे विचार उठे, उससे पूर्व ही सारदामणि उस स्त्री के समीप पहुँच गयी और अत्यंत विश्वास एवं अपनेपन से उसका हाथ पकड़ लिया । उस अद्भुत स्पर्श में छिपे प्रेम और विश्वास के भाव को वह स्त्री अनुभव करे उससे पूर्व तो बालक-जैसे सरल, कोमल और मधुर शब्द उसके कानों में पड़े—'माँ ! मैं तो आपकी सारदा पुत्री हूँ । मेरे साथी मुझे छोड़कर चले गये । रात आ गयी । अँधेरा हो गया । मैं रास्ता भूलने से व्याकुल हो गयी थी कि अब क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? ऐसे अन्धकार में रात्रि कहाँ व्यतीत करूँगी ? तभी माँ !

तुम और बापूजी आ गये। कितना अच्छा हुआ। अब मुझे कोई चिन्ता नहीं रही है। नहीं तो क्या पता मेरा क्या होता।'

सारदामणि के इन शब्दों ने लुटेरा-दम्पति के हृदय के आस-पास व्याप्त क्रूरतापूर्ण कठोर परदे को भेद डाला और उनके अन्तर्हृदय में अबतक अगोचर रहे प्रेम-निर्झर को प्रवाहित कर दिया। उन दोनों ने बहुतों को लूटा था, बहुत-सी स्त्रियों की अनुनय-विनय इन्होंने सुनी थी, कितनी ही स्त्रियों का क्रन्दन इन्होंने सुना था परंतु अबतक इन पर किसी का प्रभाव नहीं पड़ा था। आजतक किसी स्त्री ने 'माँ', 'बाबा' कहकर अपना दायित्व इतने विश्वास के साथ इन्हें सौंपा नहीं था। दोनों को लगा कि सचमुच ही यह पूर्वजन्म की हमारी पुत्री ही होगी, नहीं तो इतना अधिक प्रेमभाव उनका एक अपरिचित कन्या पर क्यों उमड़ता ?

स्त्री ने कहा—'अच्छा हुआ, आज हमलोग पहले चल दिये, नहीं तो मेरी सारदा का क्या होता ?'

'माँ ! मुझे दक्षिणेश्वर पहुँचा दोगी न ?'

'अवश्य, अब तुझे कोई अकेली थोड़े जाने देंगे ? हम दोनों तुझे पहुँचाने चलेंगे, परंतु आज इस समय जाया नहीं जा सकेगा। आज तू थक गयी है, तेरे पैर कैसे सूज गये हैं। अन्धकार भी कितना घोर हो गया है।' इतना कहकर वह स्त्री अत्यन्त स्नेह से सारदामणि के सिर और पीठ पर हाथ फेरने लगी। उसने अपने पति से कहा—'आप शीघ्र चलिये। हम धीरे-धीरे आती हैं। समीप के गाँव में रात्रि में रुकेंगी। प्रातः मेरी सारदा की थकान उतर जायगी, तब हम तारकेश्वर चलेंगी।'

> इस स्वर में न भय था, न क्रन्दन परन्तु वहाँ था मधुर प्रेम-पूर्ण संबोधन कि जिसे लुटेरे ने अपने जीवन में प्रथम बार सुना था।

धीरे-धीरे चन्द्रमा के प्रकाश में चलते-चलते माँ और पुत्री दोनों समीप के गाँव में आ गयीं। वहाँ माता बोली—'अरे ! मेरी बेटी भूखी है, आप कुछ खाने को तो ले आइये।'

पुरुष ने उत्साह से स्वीकृति तो कर दी, परंतु इस समय घनघोर काली रात्रि में एक छोटे गाँव में खाने को कहाँ से मिले। जैसे तैसे करके वह एक दूकान से थोड़ा चना-गुड़ खरीद लाया। माँ ने अपनी गठरी खोलकर उसमें से एक कपड़ा निकालकर पृथ्वी पर बिछाकर उस पर सारदामणि को बैठाकर कहा—'बेटी ! कल तुझे मिठाई खिलाऊँगी, आज तो बस यही है।' अन्तःकरण के सच्चे प्रेम से भींगी इस खाद्य सामग्री में भी सारदामणि को अदभुत स्वाद आया। उसने माँ के हाथ से उन्हें बड़े प्रेम से खाया।

'अब तू बिल्कुल चिन्ता मत कर।' कहकर उस स्त्री ने अपने समीप के कपड़ों का बिछौना बिछा दिया और उसके ऊपर सारदामणि को सुलाया। स्वयं भी उसके समीप थोड़ी दूरी पर सो गयी। बहुत अधिक थकान लगी थी और अब तो माता-पिता की प्रेमपूर्ण छत्रछाया भी थी, इसलिये सारदामणि थोड़ी ही देर में निश्चिन्त होकर प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो गयी। कैसा था अटल विश्वास ! और इस विश्वास का कैसा सुन्दर सुखद परिणाम ! जिसे दूर से ही देखकर भले-भले थरथराने लगते थे और कितनों को साक्षात् यमदूत-सा दिखायी देनेवाला यह पुरुष हाथ में लाठी लिये पुत्री सारदा की रक्षा के लिए रात्रि भर पहरा देता खड़ा रहा।

प्रातःकाल हुआ। सारदामणि की निद्रा टूटी। गाढ़ निद्रा के परिणामस्वरूप उसका शरीर हलका फूल-जैसा हो गया था। थकान उतर गयी थी और अब वह चलने योग्य थी। उसने कहा—'बाबा ! मुझे मार्ग बताइये, मैं चली जाऊँगी।'

'क्या कहा ? अपनी फूल-जैसी बेटी को मैं अकेली थोड़ ही जाने दूँगी ? तू अकेली जायगी तो हमें कितनी

चिन्ता होगी। चलिए, हम अपनी सारदा को तारकेश्वर तक तो पहुँचा दें।' माँ ने कहा।

'हाँ, इसके साथियों के हाथों सौंपकर हम निश्चिन्त हो जायँगे।'

इस प्रकार माता-पिता और पुत्री आनन्द करते-करते तारकेश्वर का मार्ग तय करने लगे। मार्ग में चने के लहलहाते खेत पड़े और माँ खेतों में से चनों के पेड़ उखाड़-उखाड़ कर सारदामणि की गोद में डालती थी। मार्ग चलते-चलते माँ चने के हरे-हरे दाने निकाल-निकाल कर सारदा को देती और कहती—'देख तो सारदा! ये ताजे चने कैसे मीठे लगते हैं! थोड़ा खा तो सही बेटी!' चनों की अपेक्षा देनेवाली माँ के हृदय में जो मिठास भरी थी, वह सारदा के हृदय को आनन्द से भर रही थी। वह इन बागदी माता-पिता की छोटी-सी लाड़ली बेटी ही बन गयी और इस प्रकार माँ के हाथ से चने लेकर प्रेमपूर्वक खाने लगी। इस प्रकार प्रेम के आदान-प्रदान में मार्ग कब तय हो गया, इसका तीनों में से किसी को पता ही न लगा और तारकेश्वर आ गया।

'आप देखते हैं न, अपनी बेटी को हमने अभी तक मिठाई नहीं खिलायी है। आप पहले स्नान करके तारकेश्वर की पूजा कर लें, फिर बाजार में जाकर अच्छी-अच्छी वस्तुएँ मेरी सारदा के लिए ले आइए। आज तो अपनी बेटी को अपने हाथों से खिलाऊँगी।,

माँ के हृदय से पल-पल में छलकते प्रेम का सारदामणि अनुभव कर रही थी। कौन कह सकता था कि ये निष्ठुर लुटेरे हैं? इनसे भयभीत होना कैसा? प्रेम और आनन्द से भरे इनके हृदयों से तो अपार वात्सल्य छलक रहा था। लोगों द्वारा सुनी हुई बातों की अपेक्षा सारदामणि का अनुभव तो कुछ और ही था। यहाँ धिक्कार, वैर और ईर्ष्या के बदले वह तो प्रेम का ही अनुभव कर रही थी। लेने के बदले सर्वस्व देने की भावना ही मूर्तिमती बनी थी। अपने बालक के लिए सभी कुछ करने और देने का अप्रतिम निर्मल स्नेह प्रतिपल छलक रहा था। मनुष्य का बाहरी दिखावा, बर्ताव और कार्य भले चाहे जैसे हों, परंतु मनुष्य का आन्तरिक कलेवर तो प्रेम, करुणा, औदार्य और माधुर्य से ही भरा होता है, ऐसा अनुभव सारदामणि को हुआ और उस दिन उसके लिये ये लुटेरे-दम्पति सच्चे अर्थ में माता-पिता बन गये।

तारकेश्वर भगवान् की पूजा करके पिता पुत्री के लिए मिठाई खरीदने गये। इतने में तो सारदामणि के साथी भी वहाँ पहुँचे। सारदामणि को देखकर उन्हें संतोष हुआ। अकेली सारदा इन भयानक जंगलों को कैसे पार कर सकेगी, यह चिन्ता अब निर्मूल हो गयी। परंतु उसके समीप बैठी बागदी स्त्री को देखकर उन्हें कुछ विचित्र-सा लगा। यह देखकर सारदा ने कहा—'दीदीमणि! माँ ठकुरानी! देखो तो सही, यह मेरी माँ है, बाबा मिठाई लेने गये है, अभी आयेंगे। इन माँ-बाबा—दोनों ने मार्ग में मेरी बहुत सँभाल की है। यदि ये रात्रि में न मिले होते तो पता नहीं, मेरा क्या होता!'

सब लोग दोपहर को एक-साथ भोजन करने बैठे। बागदी पिता द्वारा लायी हुई मिठाई सभी यात्रियों ने प्रेम से खायी। उस समय वहाँ गङ्गा-स्नान करने जा रहे यात्रीगण न थे और न थे बागदी जाति के लुटेरे। मानो वे सब एक ही माँ की संतान हों, इस प्रकार प्रेम के नाते सब एक परिवार बन गये थे। माता-पिता ने अपनी लाड़ली बेटी को खूब आग्रह करके जिमाया। अब इस प्यारी पुत्री को विदा करना था। एक रात्रि में ही युग-युगों का स्नेह-बन्धन जाग उठा था। जन्म-जन्मान्तरों की प्रीति प्रकट हो गयी थी।

'अरे रे! सारदा बेटी! तू हमें ऐसे ही छोड़कर चली जायगी?' माता-पिता को पुत्री से बिछुड़ने पर महान् दुःख हो रहा था। उनके नेत्रों से अश्रुओं की अविरल धारा प्रवाहित होने लगी। सारदामणि भी उनके अद्भुत स्नेह को देखकर गद्गद हो रही थी।

'माँ-बाबा! अब आप लौट जाइए, आपको विलम्ब

(शेष पृ० ३० पर)

# ऐसी है माँ सारदा

—डॉ० केदारनाथ लाभ

शुचि जीवन पावन चरित, रामकृष्णगत प्राण।
ऐसी हैं माँ सारदा, पावनता की खान ॥१॥

ऐसी हैं माँ सारदा, ज्यों जाड़े की धूप।
शरण सुखद, हियहारिणी, निर्मल सुलभ अनूप ॥२॥

नयन नमित सस्मित वदन, मुक्त श्याम घन केश।
सित वसना श्री सारदा, हरतीं सब के क्लेश ॥३॥

अमजद भी जिनके लिए, यथा सारदानन्द।
उन माँ की तू शरण गह, तज सारे छल छन्द ॥४॥

युग कर धर निज गोद में, बैठी हैं जो शान्त।
गह उनके पद कंज तू, मेरे मन निर्भ्रान्त ॥५॥

मेरे मन निश्चिन्त रह, सदा तुम्हारे संग।
रहतीं वरदा सारदा, करती अभय अभंग ॥६॥

दीप शिखा निष्कम्प ज्यों, यथा पद्म-पर्यंक।
ऐसी हैं माँ सारदा, ज्यों अकलंक मयंक ॥७॥

नद नदीश गिरि मरु विपिन, या गृह में कर वास।
सदा संग हैं एक माँ, रखना यह विश्वास ॥८॥

थामे रहना हाथ माँ, जब तक जग के खेल।
खेलूँ, गिरूँ न, देखना, पाँव न हों बेमेल ॥९॥

अभयंकरी शुभंकरी, सारदेश्वरी नाम।
जपता रह निष्काम तू, मेरे मन अविराम ॥१०॥

गंगा-सी शिशु वत्सला, भुक्ति-मुक्ति की धाम।
स्वीकारो माँ सारदे! मेरे विनत प्रणाम ॥११॥

—o—

# मातृ प्रणाम

—श्रीमती स्निग्धा मजुमदार
पटना

एक शतक १८८६ ई० से १९८६ ई०। काल के प्रवाह में बीत गये सौ वर्ष। श्रीरामकृष्ण भावधारा में विश्वासी लोगों के लिए ये सौ साल अत्यधिक अमूल्य हैं। श्रीरामकृष्ण मठ और मिशन स्थापना की शताब्दी पूरी हुई। इसी पुण्य क्षण में "महीयसी संघ जननी" जिनके आकुल आग्रह, आन्तरिक सदिच्छा और सुचारु परिचालन से इस विश्वविख्यात प्रतिष्ठान का जन्म हुआ, भगवान श्रीरामकृष्ण की उन शक्तिरूपिणी परमा प्रकृति सारदा माँ का ही सबसे पहले स्मरण हो आता है।

यहाँ यह कहना उचित होगा कि श्री श्री ठाकुर की इच्छा से ही इस प्रतिष्ठान का जन्म हुआ, लेकिन श्री श्री ठाकुर ने अपने स्वल्प जीवनकाल में सभी धर्मों के अनुसार उपासना के माध्यम से परम ब्रह्म की उपलब्धि की और सारी उपासना के पश्चात् अपनी मृण्मयी माँ के भीतर चिन्मयी माँ को प्रत्यक्ष किया, "जितने मत उतने पथ" की अधारशिला पर सर्वधर्म समन्वय—जैसे विशाल कर्मयज्ञ की सूचना दी। उन्होंने इसी कर्मयज्ञ को सफल बनाने के लिए अपने अन्तरंग पार्षदों को तैयार किया था जिनमें शीर्षस्थानीय हैं स्वामी विवेकानन्द। एक ओर श्रीरामकृष्ण अपने इस धर्मयज्ञ या कर्मयज्ञ को रूपायति होते हुए नहीं देख पाये दूसरी ओर स्वामीजी ने अपने जीवन काल में इस विराट कर्मयज्ञ का शुभारम्भ तो किया था, किन्तु दीर्घ काल तक इस काम का परिचालन वे नहीं कर पाये थे। आनुष्ठानिक रूप से मठ और मिशन प्रतिष्ठा के चार साल बाद अपने गरु द्वारा आदेशित कर्मयज्ञ का भार अपने प्रिय गुरुभ्राता स्वामी ब्रह्मानन्दजी के करकमलों में समर्पित करके वे पर ब्रह्म में लीन हो गये यात्रा शुरू ही हुई थी कि कर्णधार बदल गये। श्री श्री ठाकुर की सदिच्छा उनके जीवनकाल में वास्तविक रूप धारण नहीं कर पायी थी। स्वामीजी के लिए भी इस कर्मयज्ञ को दीर्घकाल तक सम्पन्न करना सम्भव नहीं हो पाया था। इसलिए सुचारु रूप से उसका संचालन किया था माँ ने अन्तरालवर्त्तिनी रहकर भी।

श्री श्री ठाकुर ने निर्वाण के पूर्व अपने प्रिय शिष्यों को संघबद्ध होकर लोक शिक्षा एवं शिवज्ञान से जीव सेवा करने का आदेश दिया था। १८८६ ई० में ठाकुर के देहावसान के बाद ही उनके अन्तरंग पार्षदगण घर नहीं लौट कर संघबद्ध हो गये। श्रीरामकृष्ण मिशन की शुरुआत तब से हुई। इसलिए १९८६ ई० में रामकृष्ण मठ की शततम वर्षपूर्ति के आयोजन हुए। मठ और मिशन की स्थायी प्रतिष्ठा की परिकल्पना-सभा में त्यागी गुरुभाइयों और गृही भक्तों को स्वामीजी ने कहा "श्री श्री माँ को श्रीरामकृष्णदेव की सहधर्मिणी मानकर हमारी गुरूपत्नी समझते हो? वह केवल वही नहीं हैं भाई, हमारा जो संघ होने जा रहा है माँ ही उसकी रक्षाकर्त्री, पालन कारिणी एवं वही हमारी संघजननी हैं।"

१८९० ई० के मार्च महीने से अपने तीर्थभ्रमणकाल में माँ जब बोधगया दर्शन को गयीं तब बौद्ध बिहार के अतुल ऐश्वर्य को देखकर उनके कोमल प्राण त्यागी सन्तानों की दुरवस्था की बात सोचकर रो उठे। जिन लोगों को तब तक नहीं था रहने का स्थायी आवास और नहीं थे अन्नवस्त्र के संसाधन। इसलिए संघ को सुप्रतिष्ठित देखने के लिए उन्होंने ठाकुर के समक्ष व्याकुल प्रार्थना की थी। माँ की इस व्याकुल प्रार्थना के ही परिणाम "रामकृष्ण मठ और मिशन"। माँ ने स्वयं कहा

"आहा इसके लिए ठाकुर के पास मैं कितना रोयी कितनी प्रार्थना की ! तब तो आज ये मठ आदि बने।"

साधारण एवं सरल ग्रामीण महिला होकर भी विश्वविख्यात इस संघ की संघजननी होना सारदा माँ के लिए सम्भव हुआ था उनकी चारित्रिक विशेषताओं के कारण। हम जानते हैं कि ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने श्री श्री सारदामणि को सांसारिक हर छोटे बड़े विषय की शिक्षा देकर तैयार किया था। उसी माँ की ठाकुर ने देवीमातृ रूप में षोड़षी पूजा भी की थी। ठाकुर ने माँ की पूजा की थी इसलिए माँ देवी नहीं कही जाती हैं बल्कि वे तो जगत जननी आद्याशक्ति मानवी रूप में आविर्भूत हुई थीं रामभक्त दरिद्र ब्राह्मण श्री रामचन्द्र मुखोपाध्याय की बेटी के रूप में। बचपन से ही उनमें देवोपम और मानवोचित गुणों का अपूर्व समन्वय दिखाई पड़ा। इस बारे में ठाकुर को भी मालूम था। इसलिए ठाकुर ने माँ को शिक्षा देकर देवी के अन्दर श्रेष्ठ मानवी की और पूजा करके मानवी के अन्दर शक्तिरूपिणी देवी की प्रतिष्ठा की। विश्वमानव की आराध्या मातृदेवी की पूजा के मंगलकलश की प्रतिष्ठा ठाकुर ने अपने कर कमलों से की। भगवान् श्री रामकृष्ण ने माँ के बारे में कहा था कि वह साधारण स्त्री नहीं है, "वह मेरी शक्ति है। वह सारदा सरस्वती, ज्ञान देने के लिए आयी है।"

श्रीरामकृष्ण का ही एक और रूप हैं सारदा माँ, जिनमें श्रीरामकृष्ण की सारी विभूतियाँ समाहित हैं, पर मातृत्व की कोमलता से आवृत्त होकर। उन्होंने ठाकुर की त्यागी सन्तानों के पास अज्ञात, अज्ञेय और अवलुप्त रह कर भी मातृस्नेह की अमृत धारा में उन्हें स्नात किया। ये त्यागी संन्यासी भिक्षा हेतु निकल कर सबसे पहले माँ के पास ही गये थे और माँ ने उन्हें पूर्णता के प्रतीक स्वरूप एक रुपया अर्थात् सोलह आने देकर आशीर्वाद दिया। "उनलोगों की त्याग साधना सफल और सार्थक हो, वे पूर्णकाम हों," यह आशीर्वाद त्याग सिद्ध जननी की ओर से त्यागव्रत में उद्योगी सन्तानों के लिए श्रेष्ठ आशीर्वाद बना। अर्थात् अमृतत्त्व लाभ के लिए उनकी यह यात्रा पूर्णरूप से सार्थक हो। साथ ही प्रकारान्तर से भावी संघ को भी यह आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

श्री श्री सारदा माँ अपनी महिमा से ही महिमान्वित हैं। वैसे तो वे श्रीरामकृष्ण की अनुगता थीं लेकिन मातृत्व के क्षेत्र में अपने पति, गुरु और ईष्ट श्रीरामकृष्णदेव का हस्तक्षेप भी सह नहीं सकती थीं। कब वे अनजाने में अपनी त्यागी सन्तानों की अभिभाविका एवं भविष्य संघ की जननी बनीं यह कहना मुश्किल है। संघजननी के रूप में उनका दायित्व, सचेतनता का प्रथम प्रकाश तब दिखाई पड़ा जब त्यागी सन्तानों के रात्रि भोजन के परिणाम को लेकर ठाकुर के साथ उनका मतविरोध हुआ था। ठाकुर ने उन सन्तानों के जपतप को ध्यान में रखकर आहार के परिणाम में कमी की तो माँ ने स्वास्थ्य हानि के भय से उचित परिणाम की व्यवस्था की थी।

संघजननी के रूप में माँ समय समय पर एक ओर वज्र जैसी कठोर दृढ़ रहतीं वही दूसरी ओर कुसुम जैसी कोमल भी थीं। प्लेग जब महामारी के रूप में फैल गया तो उस समय व्यापक सेवा कार्य के लिए स्वामीजी को अर्थाभाव का अनुभव हुआ, इसलिए उन्होंने मठ बेचकर अर्थ संग्रह करने को सोचा। लेकिन माँ ने दृढ़ता के साथ स्वामीजी की इस परिकल्पना को रद्द कर दिया, क्योंकि माँ समझती थीं संघ का रहना ही आवश्यक है। संघ रहने से ही जनहितकारी कार्य सम्भव होंगे, अन्यथा नहीं। सेवा एक महान काम अवश्य ही है, लेकिन वह और भी महान हो जाता है अगर वह स्थायी हो। इसलिए माँ ने स्वामजी को कहा "बेटा तुम बेलुड़ मठ कैसे बेचोगे? इस मठ की स्थापना हुई मेरे नाम से संकल्प करके और ठाकुर के नाम से उत्सर्ग करके। उसे बेचने का अधिकार ही तुम्हारा कहाँ? क्या एक ही काम करके बेलुड़ मठ निःशेष हो जायेगा? उनके कितने काम, ठाकुर के अनन्त भाव सारी दुनिया में फैलेंगे? युग युग तक यह भावधारा बहेगी।" माँ के इस निश्चित निर्णय लेने की क्षमता से ही उन्होंने उनको संघ

जननी बनाया।

एक और घटना है किसी कर्मचारी को ऐकबार चोरी करने की जुर्म में स्वामीजी ने बरखास्त कर दिया था। वह बेचारा सीधा माँ के पास गया और उसने अपना दोष स्वीकार किया और यह भी बताया कि नौकरी नहीं रहने से वह सपरिवार अनाहार से मारा जायेगा। इन बातों को सुनकर कोमल प्राण माँ ने बाबूराम महाराजजी को आदेश देकर उसे फिर से काम पर रख लिया। इस पर स्वामीजी गुस्सा हो सकते है कहने पर माँ ने गम्भीरता से कहा "मैं कहती हूँ, ले जाओ।" स्वामीजी को जब पता चला कि माँ के आदेश से बाबूराम महाराज ने उस बरखास्त किये गये कर्मचारी को वापस मठ में लाया है तो स्वामीजी हँसकर बोल उठे, "बेटा हाईकोर्ट चिने छे।" (लड़का हाइकोर्ट को जानता है।) हाईकोर्ट जिसपर और किसी की राय नहीं चल सकती।

माँ हैं विश्वमयी; विश्वमाता। इसलिए उनमें हम आदर्श जननी को पाते हैं। वह जननी जो अन्धस्नेहवश अपनी सन्तान को विपथगामी नहीं होने देती, परन्तु मातृस्नेह से सन्तान को अपनी भूल समझा देती है। भूल सुधारने में उत्साहित करती है और अज्ञानता के अन्धकार से ज्ञान के आलोक में जाने में सहायता करती है। दुर्बल को क्षमा करती है, उसे आश्रय देती है। ऐसी सन्तान को दुर्बलता पर विजय प्राप्त करने का पथ बतला देती है, लेकिन उसकी दुर्बलता को बढ़ावा नहीं देती। इसलिए किसी ने ठीक ही बताया "माँ स्नेहमयी थीं पर स्नेह दुर्बला नहीं थी।" श्रीरामकृष्ण संघ पर उनका अदृश्य प्रभाव हमेशा क्रियाशील था। संघ के विस्तार के साथ-साथ संघ का आदर्श कम नहीं हो पाये इस पर भी उनकी सजग दृष्टि थी।

सारदा माँ क्या श्रीरामकृष्ण मठ और मिशन की ही संघजननी थी? क्या उन्होंने स्त्री जाति के लिए कुछ नहीं किया? इन प्रश्नों के उत्तर में हम कह सकते है कि माँ स्त्री जाति को केवल घर की चार दीवारी में आबद्ध रखना नहीं चाहती थीं, वे चाहती थीं स्त्रियाँ भी शिक्षित और स्वावलम्बी बनें, जिससे कि वे प्रमाणित कर सकें, "मैं नारी, मैं महीयसी हूँ।"

आज चारों ओर नारीमुक्ति का नारा लग रहा है। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि प्रायः सौ साल पहले श्री श्री माँ इस नारी मुक्ति का पथ प्रदर्शन कर गयी। वह चाहती थीं कि नारी भी पुरुष के साथ कंधे में कंधा मिलाकर काम करे। उनकी इस इच्छा के फलस्वरूप हम सारदेश्वरी आश्रम तथा श्रीरामकृष्ण सारदा मिशन जैसे दो प्रतिष्ठानों को पाते हैं; जिनका परिचालन संन्यासिनी ब्रह्मचारिणीगण करती हैं।

जीवन के अन्तिम दिनों तक माँ संघ को सुप्रतिष्ठित और सुपरिचालित करने के लिये सचेष्ट थीं। वे प्यार को ही संघ का प्राण समझती थीं। उनके अपरिसीम स्नेह या प्यार के वारि—सिंचन एवं मातृहृदय के सस्नेह यत्न से श्रीरामकृष्ण मठ और मिशन आज बहुशाखा विस्तृत विशाल वृक्ष जैसे एक विश्वविख्यात प्रतिष्ठान के रूप में सर्व परिचित है— जिसकी छत्रछाया में आकर संसार के तापदग्ध मनुष्य को शान्ति मिलती है और दिशाहारा व्यक्ति को मिलता है निश्चित दिशा का पता। आज उनके जन्म दिन के पावन अवसर पर मातृरूपिणी, शक्तिरूपिणी, संघजननी को शत शत प्रणाम है।

"या देवी सर्व भूतेषु मातृरूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।

या देवी सर्व भूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।

या देवी सर्व भूतेषु शान्ति रूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।"

रिपोर्ताज

# बेलुड़ मठ में दुर्गापूजा

—एक प्रत्यक्षदर्शी

बेलुड़ मठ ! परम लोकोत्तर देव स्थान ! वृक्षों, लताओं, कुंजों पुष्पवाटिकाओं से परिवेष्टित विशाल परिसर तथा हरे-हरे तृणों से आच्छादित मनोरम विस्तृत मैदान ! पूर्व भाग में कल-कल ध्वनि करती हुई महामिलनोन्मुखी पतित-पावनी जाह्नवी ! और देव-मन्दिरों की मालाएँ तथा भव्य भवनों के समूह ! साथ ही यत्र-यत्र-सर्वत्र गेरुआ एवं श्वेत परिधान में विचरण करते हुए त्याग, वैराग्य-पवित्रता व्रतधारी साधु एवं ब्रह्मचारी गण ! ऐसे मनोहारी दृश्य को देखकर हर नवागन्तुक थोड़ा रुक जाता है और सोचने लगता है, 'ऐसा दृश्य, ऐसी शान्ति, ऐसी पवित्रता, ऐसा उन्मुक्त वातावरण कलकत्ता जैसी विशाल महानगरी के पास भी क्या संभव हो सकता है ! क्या मैं किसी दिव्य लोक में तो नहीं पहुँच गया हूँ ! ऐसी ही अद्भुत है बेलुड़ मठ की यह पवित्र भूमि, जहाँ घनीभूत हैं स्वामी विवेकानन्द आदि महापुरुषों की मधुर स्मृतियाँ !

मठ परिसर के पूर्वी भाग में गंगा के करीब सौ गज की दूरी पर अवस्थित है विशाल भव्य तथा गगनचुम्बी मुख्य मन्दिर—प्राच्य और पाश्चात्य के, प्राचीन एवं अर्वाचीन शिल्प कलाओं के अपूर्व समन्वय का नमूना तथा मन्दिर की वेदी पर 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' विराजमान हैं समन्वय मूर्त्ति युगावतार भगवान श्री रामकृष्ण। मन्दिर का मुख्य द्वार दक्षिण दिशा की ओर है तथा मन्दिर के मध्य में पूर्व एवं पश्चिम दिशाओं की ओर भी दो द्वार हैं। आश्विन मास का शुक्ल पक्ष। शारदीया दुर्गापूजा का समय। मन्दिर के पूर्वी द्वार के पास पश्चिमाभिमुख एक विशाल तथा सुन्दर मंडल बना है, जहाँ माँ दुर्गा की मनोहारी मूर्त्ति शोभायमान हो रही है ! माँ के दक्षिण पार्श्व में सरस्वती तथा वामपार्श्व में लक्ष्मी हैं। साथ ही गणेश जी, कार्तिकेय, महिषासुर आदि की भी मूर्तियाँ हैं। सभी प्रतिमाएँ बहुत ही सुन्दर ढंग से बनायी गयी हैं। न कोई आधुनिक आडम्बर (Modern Pose), न कोई विलासप्रदीपन। सभी सौम्य एवं जीवन्त मूर्तियाँ हैं।

बेलुड़ मठ में (१९०१ ई० से लेकर आज तक) हर वर्ष अत्यन्त श्रद्धा, भक्ति तथा उत्साह के साथ दुर्गापूजा महोत्सव मनाया जाता है। पंचमी तिथि को देवी के बोधन से विधिवत पूजा आरम्भ होती है। इसके १५-२० दिनों पहले से ही सुबह-शाम आगमनी गीत गाये जाते हैं। सभी माँ के दर्शन हेतु आकुल कंठों से गाते हैं !

कबे जाबे बलो गिरिराज ! गौरी रे आनिते।
व्याकुल हयेछे प्राण उमा के देखिते हे ॥'

-'हे गिरिराज, गौरी को लाने कब जाओगे ! उमा को देखने के लिए मेरे प्राण व्याकुल हो रहे हैं।।'

जागो-जागो योगेश्वरी दुर्गे दुर्गति नाशिनी।
अकाल बोधने जागो बिल्वमूले कात्यायनी ॥'

-हे योगेश्वरी, हे दुर्गति-नाशिनी दुर्गे, जागो। हे कात्यायनि, बिल्ववृक्ष के तले इस अकाल बोधन के द्वारा जागो।'

ज्यों-ज्यों दुर्गापूजा का समय नजदीक आता जाता है, मठवासी एक असीम उत्साह, आनन्द तथा भक्ति से पूर्ण होते जाते हैं। माँ का आगमन जो होगा ! महोत्सव की सारी तैयारियाँ पहले से ही पूरी कर ली जाती हैं। नहबत खाना (Music Tower), चिकित्सा केन्द्र, पुलिस कैम्प आदि भी बनकर तैयार रहते हैं। विद्युत प्रकाशादि (Electric light) की विशेष व्यवस्था से रात्रि भी दिन में बदल जाती है। यानी सारा मठ-

प्राङ्गण माँ के स्वागत के लिए सजधजकर तैयार रहता है।

फिर आती है बहुप्रतीक्षित वह घड़ी जब माँ का आगमन होता है। सभी आनन्द विभोर होकर गाने लगते हैं : 'शंखे शंखे मंगल गाओ जननी ऐसे में छे द्वारे' पंचम तिथि को माँ का बोधन होता है और इसी दिन से महोत्सव की धूमधाम आरम्भ हो जाती है। दसमी तिथि तक माँ की विधिवत पूजा की जाती है। ऐसी पूजा शायद ही कहीं अन्यत्र देखने को मिलेगी। पूजा अतिविस्तार पूर्वक एवं पूरी तरह शास्त्र-विहित रीति से सम्पन्न होती है। न विधि में कोई कटौती न समय में। पूजक के पद पर आसीन होते हैं शुद्ध सत्त्वधारी ब्रह्मचारी एवं तंत्रधारक [संन्यासी]। जिन्हें न दक्षिणा का कोई लोभ रहता है, न कोई जल्दबाजी। केवल पूजा के लिए पूजा करना, अपनी श्रद्धा भक्ति, प्रेम के द्वारा माँ को प्रसन्न करना ही जिनका अभीष्ट होता है। कोई वस्तु भक्ति पूर्वक अर्पित करने पर ही देवी उसे ग्रहण करती है। मठ में नाना प्रकार की पूजन सामग्रियों के विराट आयोजन को देखकर दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। इस तरह की व्यवस्था, पूजन सामग्रियों पर इतना खर्च केवल बेलुड़ मठ में ही हो सकता है।

प्रात: काल ब्राह्म-मुहूर्त में रात्रि की नीरवता को चीरते हुए बज उठते हैं शंख, गूँज उठती है शहनाई। साधु, ब्रह्मचारी तथा भक्तगण नये-नये वस्त्र पहनकर लपके कदम बढ़ चलते हैं मुख्य मन्दिर की ओर। गर्भ मन्दिर का द्वार उन्मोचन होता है और श्री रामकृष्णदेव की मंगलारति होती है। फिर सभी लोग माँ दुर्गे की प्रतिमा के सम्मुख विनीत भाव से बैठ जाते हैं तथा माँ की ओर अपलक नेत्रों से देखने लगते। शीघ्र ही शंख की ध्वनि, शहनाई की गूँज, घंटी की टनटन, ढोलों की गड़गड़ाहट तथा झाँझ की झंकार से सारा वातावरण मुखरित हो उठता है और साथ-साथ माँ की मंगलारति आरम्भ हो जाती है। उपस्थित लोगों के हृदय में उत्साह, उमंग एवं आनन्द की लहरें हिलोरे लेने लगती हैं। आरती समाप्त होते ही साधु-ब्रह्मचारीगण सुमधुर कंठों से माँ की स्तुति करते हैं। सर्वप्रथम वेद पाठ (देवी सूक्तम्, दुर्गा सूक्तम् आदि) होता है, फिर अन्य स्तोत्रों का गायन होता है। ब्राह्ममुहूर्त की उस नीरव वेला में लगता है माँ सभी से स्नेहपूर्ण बातें कर रही हैं तथा आशीर्वाद प्रदान कर सभी का मंगल कर रही हैं।

इसके बाद सुबह में निर्दिष्ट समयानुसार तिथि-विहित पूजा आरम्भ होती है जो प्राय: दोपहर तक चलती है। पूजा देखने हेतु शांत, अचल अटल बैठे रहते हैं सैकड़ों साधु ब्रह्मचारीगण तथा अगणित भक्त-वृन्द। घंटों इस तरह चुपचाप स्थिरभाव से बैठ रहना क्या मामूली बात है! हृदय में श्रद्धा, भक्ति, प्रेम विश्वास के बिना यह संभव नहीं हो सकता। सभी माँ के चरणों में सदा अपनी-अपनी प्रार्थनाएँ अर्पित करते रहते हैं। भले ही कोई पारलौकिक आनन्द के लिए प्रार्थना करता हो तो कोई क्षणभंगुर लौकिक सुखों के लिए। परन्तु सभी का हृदय प्रेम भक्ति से पूर्ण रहता है। दोपहर में भोग के बाद देवी की आरती होती है। फिर वही तुमुल ध्वनि। इधर-उधर से सभी मन्दिर की ओर आरती देखने हेतु दौड़ पड़ते हैं। आरती देखते ही बनती है। इसके बाद प्रसाद वितरण होता है। इस बर्ष महाष्टमी के दिन ही करीब २५००० (पच्चीस हजार) लोगों के बीच प्रसाद का वितरण हुआ। बेलुड़ मठ में जो भी इस महोत्सव में आते हैं वे एकमात्र देवी के आकर्षण से ही आते हैं, अन्य किसी आकर्षण से नहीं। अन्यत्र विभिन्न प्रकार के मनोरंजन के कार्यक्रमों का आयोजन कर लोगों को आकृष्ट किया जाता है। परन्तु यहाँ मनोरंजन की कोई व्यवस्था नहीं, एकमात्र देवी की ही पूजा, अर्चना, प्रार्थना में सभी मग्न रहते हैं। यह सब जानकर भी जो लोग यहाँ आते हैं वे नि:सन्देह एकमात्र देवी के आकर्षण से ही आते हैं। अर्थात् यहाँ आनेवाले अधिकांश लोग सच्चे भक्त होते हैं।

धीरे-धीरे दिन ढलता है। भगवान भास्कर अस्ताचल-गामी होते हैं और संध्या होती है। शीघ्र ही मन्दिर में शंखध्वनि होती है। सभी एकत्रित होते हैं और श्रीरामकृष्णदेव की संध्यारति आरम्भ हो जाती है।

श्रीरामकृष्णदेव की आरति के बाद होती हैं माँ की संध्यारति ! अद्भुत तथा विलक्षण आरति ! जिसकी झाँकी देखकर सभी मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। देवी की प्रतिमा जीवन्त हो उठती है और लगता है देवी बड़ी ही प्रसन्न मुद्रा में आरति ग्रहण कर रही हैं। उपस्थित भक्त वृन्द उदग्रीव होकर, अपलक नेत्रों से, उत्सुकतापूर्वक इस अद्भुत झाँकी को देखते हैं तथा अपने आप को धन्य समझते हैं। तीन-तीन पूजक एक साथ आरति करते हैं तथा दो अन्य साधु अथवा ब्रह्मचारी पंखा झलते रहते हैं। आरती करते समय दीपमालाओं के उज्ज्वल प्रकाश से पूजकों के मुखमण्डल देदीप्यमान हो जाते है तथा देवी का मुखारविन्द पूर्ण रूप से उद्भासित हो उठता है।घंटी की टनटन, ढोल की गड़गड़ाहट, झाँझ की झंकार आदि से सारा वातावरण पुनः गूजने लगता है। देवी के सामने सैकड़ों साधु ब्रह्मचारीगण तथा अगणित भक्तवृन्द बैठे रहते है। इस दुर्लभ दृश्य को देखकर लगता है कि पूजा इस लोक में नहीं बल्कि देवी लोकमें हो रही है तथा लोग मनुष्य नहीं, देवता हैं। वास्तव में त्याग, वैराग्य, भक्ति तथा ज्ञान के मूर्तिमान स्वरूप वे साधु तथा ब्रह्मचारिगण देवतुल्य ही तो हैं। नहीं, नहीं,देवता से भी बढ़कर हैं। इस समागम की पराकाष्ठा तब होती है जब रामकृष्ण संघ के संघगुरु भी अपनी उपस्थिति से सबको धन्य कर देते हैं। आरति समाप्त होते ही साधु-ब्रह्मचारियों के मुखों से उच्चरित होने लगता है प्रणाम मंत्र

सर्वमंगल मांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरी नारायणि नमोऽस्तुते ॥
सृष्टि-स्थिति-विनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारयणि नमोऽस्तु ते ॥
शरणागत दीनार्त्तपरित्राण परायणे।
सर्वस्यार्त्तिहरे देवी नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

फिर 'महिषासुर मर्दिनी स्तोत्र' की स्वर लहरी सुनकर सभी झूमने लगते हैं।

अयि गिरिनन्दिनि नन्दितमोदिनि विश्वविनोदिनिनन्दनुते,
गिरिवर विन्ध्य शिरोधिनिवासिनि विष्णु विलासिनि जिष्णुनुते।
भगवति हे शितिकंठकुटुम्बिनि भूरिकुटुम्बिनि भूरिकृते,
जय-जय हे महिषासुर मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते।

× × ×

अयि मयि दीनदयालुतया कृपयैव त्वया भवितव्ययुते,
अयि जगतो जननी कृपायासि यथासि तथानुमितासिरते।
यदुचितमत्र भवत्युररी कुरुतादुरुतापमपा कुरुते,
जय-जय हे महिषासुर मर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥२०॥

स्तोत्र का गायन समाप्त होने के बाद भजन-कीर्तन आरम्भ होता है जो देवी के रात्रिभोग तक अनवरत चलता रहता है। साथ ही दो लोग खड़े होकर लगातार देवी को पंखा झलते रहते हैं। गान के माध्यम से उपस्थित भक्तजन सम्मिलित स्वर से देवी के पादपद्मों पर श्रद्धा-भक्ति रूपी सुकोमल पुष्प अर्पित करते रहते हैं तथा बीच-बीच में आनन्दातिरेक से गा उठते है :

बड़ो धूम लेगेछे हृदि कमले।
मजा देखिछे आमर मन-पागले ॥'

'हमारे हृदय कमल में बड़ी धूम मची हुई है और पागल बना हमारा मन आनन्द का रसपान कर रहा है।' अन्त में जयजयकार के साथ कीर्तन का समापन होता है।

फिर महाष्टमी के दिन कुमारी पूजा देखने हेतु दर्शकों, भक्तों की अपार भीड़ उमड़ पड़ती है। इस पूजा को देखने के लिए लोग बहुत ही इच्छुक रहते हैं। अनुष्ठान सूची में भी इसकी तिथि एवं समय बड़े-बड़े अक्षरों में लिखे रहते हैं। पूजा का आनन्द लेने हेतु सुबह से ही लोग एकत्रित होने लगते हैं तथा व्यग्रता-पूर्वक प्रतीक्षा करते हैं उस मनोहारी दृश्य को जब ६-७ वर्ष की बालिका का पूजन देवी के रूप में किया जाता है। मन्दिर के मध्यवर्ती पश्चिमी द्वार के बाहर परिक्रमा-चबूतरे पर पूजा होती है, जहाँ पहले से ही मंडप बना होता है। देवी को एक छोटे सुसज्जित सिंहासन पर बैठाकर यथाविधि पूजा की जाती है। बालिका भी बालसुलभ चपलता से कभी मधुर मुस्कान बिखेरकर तो

कभी गम्भीरमुद्रा धारण कर, कभी सिर हिलाहिलाकर तो कभी स्थिर भाव से पूजक तथा पूजा की ओर एकटक देखकर दर्शकों को आनन्द प्रदान करती रहती है। वह दृश्य देखते ही बनता है। पूजा-स्थल के निकट बैठे रहते हैं संन्यासी एवं ब्रह्मचारीगण, संघगुरु तथा सामने का विस्तृत मैदान दर्शकों से खचाखच भरा रहता है। बीच-बीच में लोग देवी का जयजयकार करते रहते हैं। पूजा समाप्त होने पर संघगुरु देवी के पाद्पद्मों पर पुष्पांजलि अर्पितकर प्रणाम करते हैं। फिर सिंहासन सहित देवी को उठाकर दर्शकों को अन्तिम दर्शन कराया जाता है। लोग जयजयकार करते हुए देवी को प्रणाम करते हैं। इस प्रकार कुमारी पूजा की इति होती है।

अंत में आती है विदाई की वह बेला, विसर्जन की वह संध्या, जब माँ की प्रतिमा को गंगा में प्रवाहित किया जाता है। माँ का आगमन होता है तथा भक्तों को आनन्द, उल्लास एवं नवजीवन प्रदान कर वे देखते ही देखते चली जाती हैं। नहीं, नहीं, चली नहीं जातीं, बल्कि भक्तों के हृदय में अपना स्थान ग्रहण कर लेती हैं। तभी तो हमारे आनन्द का पारावार नहीं रहता। विसर्जन के दिन भगवान रामकृष्णदेव की संध्यारति के बाद देवी की यथाविधि पूजा करके उन्हें माँ सारदे (भगवान श्री रामकृष्णदेव की लीला सहधर्मिणी) के मन्दिर के समक्ष लाया जाता है। साथ-साथ चलती है संन्यासी-ब्रह्मचारियों, भक्तों की अपार भीड़! पैर पर पैर रखने की भी जगह नहीं रहती। सभी देवी के अंतिम दर्शन हेतु व्याकुल रहते हैं। मन्दिर के सामने दो-एक भक्त अपने हाथों में आग सहित धूपदानी रखकर तरह-तरह के करतबों के द्वारा देवी को प्रसन्न करते हैं। साथ ही नगाड़े के रुद्रताल के साथ कलकल नादिनी भागिरथी भी नृत्य करने लगती है। घंटा-झाँझ, शंख आदि की उच्च ध्वनि गंगाजी के दूसरे तट पर प्रतिध्वनित होने लगती है तथा देवी के जयजयकार से मठ परिसर गूँजता रहता है। फिर प्रतिमाओं को गंगा की वेगवती धारा में प्रवाहित कर दिया जाता है तथा शांति जल से भरे कलशों को मस्तक पर रखकर देवी की पूजास्थली पर लाया जाता है। सभी लोग आकर मन्दिर में बैठते हैं। संन्यासी-ब्रह्मचारीगण बिल्वपत्रों पर भी 'श्री दुर्गा शरणम्' लिखकर पूजास्थली पर अर्पित करते हैं। इसके बाद शान्तिजल का छिड़काव उपस्थित जनसमूह के ऊपर होता है। पूजा की समाप्ति यहीं हो जाती है। तदन्तर भक्तों के बीच प्रसाद का वितरण होता है। वे प्रसाद पाकर तथा माँ को अपने हृदय में धारण कर विगत दिनों की मधुर स्मृतियों को ले आनन्द से पूर्ण होकर अपने अपने घर लौट जाते हैं।

शान्ति जल के पश्चात मठ के साधु ब्रह्मचारिगण सभी मन्दिरों में तथा संघ गुरु को प्रणाम करते हैं। फिर आ जाती है महामिलन की वह घड़ी। लग जाता है आनन्द का वह मेला। माँ जिस आनन्द से सब को पूर्ण कर गयी हैं, उस आनन्द से मठवासी मतवाले हो जाते हैं। सभी एक-दूसरे को प्रणाम करते हैं, गले से गला मिलते हैं, मिठाइयाँ खिलाते हैं, नाचते हैं, गाते हैं। मठ प्रांगण में उपस्थित हो जाता है एक अद्भुत दृश्य! सैंकड़ों साधु रात्रि की प्रथम घड़ी में, चन्द्रमा की शीतल, मन्द ज्योत्सना में प्रेम से, आनन्द से एक दूसरे का आलिंगन कर रहे हैं। क्या ही मनोहारी दृश्य होता है! देवतागण भी इस दृश्य को देखने हेतु लालायित रहते होंगे। यह मधुर मिलन इसके बाद भी कई दिनों तक चलता रहता है। इस प्रकार दुर्गापूजा का महोत्सव देखते ही देखते सम्पन्न हो जाता है, लेकिन दे जाता है अपार आनन्द, असीम शान्ति तथा बहा जाता है लोगों के हृदय में भक्ति, विश्वास एवं प्रेम की त्रिवेणी।

कहा जाता है कि बेलुड़ मठ में जैसी दुर्गापूजा होती है वैसी पूजा पूरे देश में कहीं नहीं होती है। यहाँ देवी साक्षात प्रकट होकर पूजा ग्रहण करती हैं। यह कथन अक्षरश: सत्य है—इस बात की पुष्टि ऊपर के विवरणों से स्वत: हो जाती है। जहाँ देवी का आगमन स्वत: हुआ हो (प्रथम दुर्गापूजा महोत्सव के कुछ ही दिनों पूर्व स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने स्वप्न में देखा था कि माँ दशभुजा दुर्गा गंगा जी के ऊपर दक्षिणेश्वर की ओर से मठ की

ओर चली आ रही हैं। विवेकानन्द साहित्य, षष्ठ खंड, पृष्ठ—२०३), स्वामी विवेकानन्द जैसे महापुरुष के शुभ संकल्प से जिस पूजा का शुभारम्भ हुआ हो, जिस महोत्सव में देवी का श्री श्री माँ सारदा के रूप में तीन-तीन बार आगमन एवं प्रस्थान हुआ हो (माँ सारदा १९०१, १९१२ तथा १९१६ ई० में दुर्गापूजा के समय बेलुड़ मठ आयी थीं।) जहाँ बेलुड़ मठ जैसा रमणीक एवं महा पवित्र तीर्थ स्थान हो, जहाँ देवी के सर्वश्रेष्ठ भक्त श्री रामकृष्ण देव सदा विराजमान हों, जहाँ सैकड़ों त्यागी साधु-ब्रह्मचारी भगवत्-प्रेम में सदा लग्न हों तथा जहाँ शुद्ध सात्विक पूजा होती हो, वहाँ यदि माँ दुर्गा का आगमन नहीं होगा, वहाँ यदि देवी जागृत नहीं होंगी तो कहाँ होंगी ?

अतएव वे लोग धन्य हैं जो बेलुड़ मठ में दुर्गापूजा देखने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं क्योंकि उन्हें देवी के साक्षात दर्शन होते हैं। तभी तो भावावेश में आकर एक महापुरुष ने कहा था, "It is a sight for gods to see"—अर्थात् "(पूजा का) यह दृश्य देवताओं के लिए भी दर्शनीय है।" अंत में हम माँ दुर्गे से यही प्रार्थना करें, "हे देवि, हे जगदम्बे, हमारे अन्दर की कुप्रवृत्ति, कुसंस्कार, दुर्गुण आदि आसुरी भावों का नाश कर तुम सदा वहाँ विराजो। हे माँ, हमें अपने चरण में शरण दो।" जय माँ दुर्गे। इति।

(इस वर्ष २८ सितम्बर से लेकर २ अक्टूबर तक दुर्गापूजा महोत्सव बेलुड़ मठ में अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति के साथ मनाया गया। इसी महोत्सव को आधार मानकर यह लेख लिखा गया है।)

●

---

पृष्ठ २१ का शेषांश

होगा, अपने साथियों के साथ अब मैं सकुशल चली जाऊँगी।'

माता-पिता सारदामणि के साथ जाने की स्थिति में नहीं थे। उन्हें पीछे लौटकर आना ही था, तब भी यह खिचाव कुछ ऐसा था कि उनका पीछे लौटने का मन नहीं होता था। अरे, अभी थोड़ी दूर और चलते हैं। फिर बेटी का मुँह देखने को कब मिलेगा ? परंतु वियोग तो होना ही था। दोनों के पैर छूकर हाथ जोड़कर सारदामणि ने कहा—'आप दक्षिणेश्वर अवश्य आइये। आपके जामाता अवश्य आपका सत्कार करेंगे।' फिर कठोर हृदय करके माता-पिता ने पुत्री को विदा किया। जबतक सारदामणि दिखायी देती रही तबतक वे दोनों उसे देखते ही रहे और सारदामणि भी पीछे मुड़-मुड़ कर, हाथ हिला-हिला कर उन्हें आश्वासन देती रही।

कौन जानता है कि एक रात्रि में इस बागदी दम्पति के जीवन में क्या-से-क्या परिवर्तन हो जायगा। यह उन्हें समझ में नहीं आता था। उनके हृदय में कुछ जाग्रत हो गया था और वे एक अटूट स्नेह-बन्धन से आबद्ध हो गये थे। यह स्नेह-बन्धन ही उन्हें एक दिन दक्षिणेश्वर तक खींच ले गया और अपने जामाता श्रीरामकृष्ण परमहंस को देखते ही वे परम धन्य बन गये थे। तत्पश्चात् तो वे तीन-चार बार दक्षिणेश्वर आये थे और पुत्री तथा जामाता के लिए मिठाई तथा भेंट भी लाये थे। श्रीरामकृष्ण भी अपने इन बागदी साम-श्वसुर के प्रति अत्यन्त ममतायुक्त और प्रेमपूर्ण व्यवहार करते।

भगवान् की कृपा और करुणा तो देखो ! अच्छे-अच्छे तपस्वियों को वर्षों के तप के पश्चात् भी जो प्राप्त नहीं होता, वह भगवान् के प्रेम और कृपा का वरदान लुटेरे दम्पति को एक क्षण में ही मिला था। उस अँधेरी रात्रि में लुटेरे की क्रूरता के ऊपर मातृशक्ति के प्रेम की विजय हुई थी। रात्रि के घोर अन्धकार पर दिव्य प्रभात के प्रकाश की विजय हुई थी। मानव-जीवन की कलुषिता और दुष्टता के ऊपर भगवान् की परम कृपा और करुणा की विजय हुई थी और लुटेरे दम्पति के अन्धकार भरे जीवन में प्रकाशवती उषा का आगमन हुआ था।

(कल्याण से साभार)

क्रिसमस के अवसर पर

# श्रीरामकृष्ण तथा ईशु

—श्री 'म'

श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ बैठे हुए हैं। दिन के ग्यारह बजे का समय होगा। मिश्र नाम के एक ईसाई भक्त के साथ बातचीत हो रही है। मिश्र की आयु पैंतीस वर्ष की होगी। इनका जन्म ईसाई वंश में हुआ है। बाहर से तो ये साहबी वेष-भूषा धारण किये हुए हैं, परन्तु भीतर गेरुआ वस्त्र पहने हैं। इस समय इन्होंने संसार का त्याग कर दिया है। इनका जन्म-स्थान पश्चिम है। इनके एक भाई के विवाह के दिन इनके दूसरे दो भाइयों की मृत्यु हो गई थी, तब से मिश्र ने संसार का त्याग कर दिया है। ये Quaker (क्वेकर) सम्प्रदाय के हैं।

मिश्र—"वही राम घट-घट में लेटा है।'

श्रीरामकृष्ण छोटे नरेन्द्र से धीरे-धीरे कह रहे हैं, न्तु इस ढंग से कि मिश्र भी सुनें—

"राम एक ही हैं, परन्तु उनके नाम हजारों हैं।"

"ईसाई जिन्हें गॉड (God) कहते हैं, हिन्दू उन्हें ही राम, कृष्ण और ईश्वर कह कर पुकारते हैं। तालाब में बहुत से घाट हैं। हिन्दू एक घाट में पानी पीते हैं, कहते हैं 'जल'; ईसाई दूसरे घाट में पानी पीते हैं, कहते हैं 'वाटर' (Water); मुसलमान तीसरे घाट में पानी पीते हैं, कहते हैं 'पानी'।

"इसी प्रकार जो ईसाइयों का गॉड (God) है, वही मुसलमानों का 'अल्ला' है।"

मिश्र—ईशु मेरी का लड़का नहीं है, ईशु साक्षात् ईश्वर हैं।

(भक्तों से) "ये (श्रीरामकृष्ण) अभी तो ऐसे दिखते हैं, पर ये साक्षात् ईश्वर हैं। आप लोगों ने इन्हें पहचाना नहीं। मैं पहले ही इनके दर्शन ध्यान में कर चुका हूँ—अब इस समय इन्हें साक्षात् देख रहा हूँ। मैंने देखा था, एक बगीचा है, ये ऊँचे आसन पर बैठे हुए हैं; जमीन पर एक व्यक्ति और बैठे हुए हैं,—वे उतने पहुँचे हुए नहीं थे।

"इस देश में ईश्वर के चार द्वारपाल हैं। बम्बई प्रान्त में तुकाराम, काश्मीर में रावर्ट माईकेल (Robert Michael), और पूर्व बंगाल में एक और हैं।"

श्रीरामकृष्ण—क्या तुम्हें कुछ दर्शन होता है?

मिश्र—जी, जब मैं घर पर था, तब ज्योति-दर्शन होता था। इसके बाद ईशु को मैंने देखा। उस रूप की बात अब क्या कहूँ!—उस सौन्दर्य के सामने स्त्री का सौन्दर्य खाक है!

कुछ देर भक्तों के साथ बातचीत करते हुए मिश्र ने कोट और पतलून खोलकर भीतर गेरुए की कौपीन दिखलाई।

श्रीरामकृष्ण बरामदे से आकर कह रहे हैं—"इसे (मिश्र को) देखा, वीर की तरह खड़ा है।"

यह कहते हुए श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो रहे हैं। पश्चिम की ओर मुँह करके खड़े हुए वे समाधिमग्न हो गए।

कुछ प्रकृतिस्थ होने पर मिश्र पर दृष्टि लगाकर हँस रहे हैं। अब भी खड़े हैं। भावावेश में मिश्र से हाथ मिलाते हुए हँस रहे हैं। हाथ पकड़कर कह रहे हैं—'तुम जो चाहते हो, वह प्राप्त हो जायेगा।'

श्रीरामकृष्ण ईशु के भाव में हैं।

मिश्र—(हाथ जोड़कर)—उस दिन से मैंने अपना मन, अपने प्राण, अपना शरीर, सब कुछ आपको समर्पित कर दिया है।

श्रीरामकृष्ण भावावस्था में अब भी हँस रहे हैं। वे बैठे।

मिश्र भक्तों से अपने सांसारिक जीवन का वर्णन कर रहे हैं। उन्होंने बताया कि किस प्रकार विवाह के समय शामियाना के नीचे गिर जाने से उनके दो भाइयों की मृत्यु हो गई।

श्रीरामकृष्ण ने भक्तों से मिश्र की खातिर करने को कहा।

(श्रीरामकृष्ण वचनामृत, भाग ३, पृष्ठ संख्या ४१९-२१ से साभार)

धारावाहिक

# स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

"जानते हो! एक बार उन्होंने (ठाकुर ने) मुझे; बाबूराम तथा रामलाल दादा को साथ लेकर दक्षिणेश्वर के ही एक भक्त के घर यात्रा (गीतिनाट्य) देखी थी। यात्रावाला बड़ा ही सज्जन व्यक्ति था, ठाकुर को मानता था। उसके अगले दिन दक्षिणेश्वर आया था। ठाकुर ने उससे कितने ही भजन सुने। अन्त में बोले—'देखो! जब तुम ऐसे भजन रच पाते हो तो तुम्हारा इसी से हो जायगा।' उन्होंने रामलाल (दादा) को वे सब भजन लिख लेने को कहा। लाटू महाराज ने ये बातें किस नाट्यदल के सन्दर्भ में कहीं यह हमें नहीं मालूम—कहीं नीलकण्ठ के दल के बारे में तो नहीं कही है, कह नहीं सकते। .....उन्होंने एक अन्य दिन के भी गीतिनाट्य की बात कही है। वह कालीपूजा का दिन था—सम्भवतः फलहारिणी कालीपूजा का (वचनामृत - १८८४ ई०)। .....'देखो! एक दिन वहाँ (दक्षिणेश्वर में) यात्रा (गीतिनाट्य) हुई थी। मैंने रातभर देखी। उन्होंने भी बैठकर देखी थी। वहाँ मैंने सुना कि एक व्यक्ति का किसी पर प्रेम था—इतना प्रबल लगाव था कि उसने उससे मिलने के लिए धरती के भीतर सुरंग खोदकर रास्ता बना लिया था। देखो तो प्रेम का कितना खिचाव है! वे (ठाकुर) कहते थे—'तीन प्रकार के आकर्षण एकत्र हुए बिना भगवान नहीं मिलते।'"

एक भक्त—महाराज, कौन कौन से तीन आकर्षण?

लाटू महाराज—एक तो महिलाओं से प्रेम करने पर जिस आकर्षण में पड़ना होता है; दूसरा, बाल-बच्चों पर माँ-बाप का जो आकर्षण रहता है वही आकर्षण। और तीसरा है नशाखोर का नशे के प्रति जो आकर्षण रहता है, वही आकर्षण। (यहाँ पर ठाकुर कहते थे लोभी का धन के ऊपर का आकर्षण)। इन तीन आकर्षणों को एकत्र करने पर ही भगवान का दर्शन होता है।

"राम बाबू ने साधना करने के लिए एक उद्यान खरीदा था। एक दिन हमलोगों को साथ लेकर ठाकुर वहाँ गये थे। काकुड़गाछी उद्यान का रास्ता बड़ा खराब था, वहाँ गाड़ी नहीं जा सकती थी। ठाकुर पैदल ही गये। रास्ते में एक साधु का स्थान देखकर उसी के साथ वार्तालाप करने लगे। हम लोगों को खड़े रहने का निर्देश देकर वे साधु के साथ बातें करने लगे। बातचीत बहुत देर तक हुई थी। साथ के सभी लोग व्यग्र होने लगे। आखिरकार वे लोग उन्हें बुलाने गये। साधु के अखाड़े से होकर ठाकुर राम बाबू* के उद्यान में गये। वहाँ पर राम बाबू ने एक तुलसीकुंज बना रखा था। ठाकुर उसे देखकर बोले—'राम! यहाँ तो अच्छा निर्जन है—मानो तपस्या का स्थान हो। बीच बीच में यहाँ आकर ध्यान करना, समझे!' उस दिन राम बाबू ने भक्तों को मेवे, अंगूर, अनार, सन्तरे, मक्खन, मिश्री, सन्देश, खजूर आदि खिलाये थे। काकुड़गाछी के उद्यान से ठाकुर सुरेश मित्र के उद्यान में गये। बीच बीच में ठाकुर हम लोगों को साथ लेकर वहाँ जाया करते थे और सुरेश बाबू वहाँ बीच-बीच में उत्सव करते थे।" (सुरेश बाबू के घर पर भी उत्सव होते रहते थे।) (क्रमशः)

*श्री म के 'वचनामृत' में लिखा है कि साधु के साथ वार्तालाप करने के पश्चात् वे सुरेन्द्र के उद्यान में गये। परन्तु लाटू महाराज के कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि राम बाबू के उद्यान की ओर जाते समय साधु से भेंट हुई।

# बैद्यनाथ च्यवनप्राश

## अब पोलीजार में उपलब्ध

शक्ति

कफ खांसी नाशक

यौवन

दिमागी ताजगी

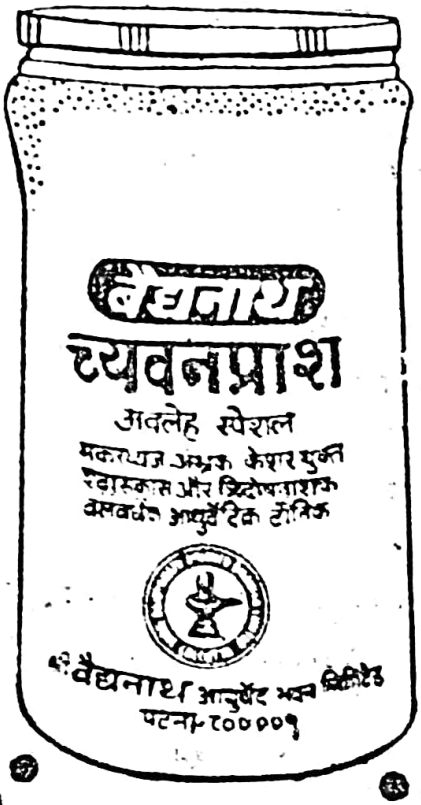

विकास

बलवर्द्धक

## आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

बैद्यनाथ ६०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है

**श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड**

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१